VISHVA-JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2018 TO 31.12.2020)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

69वां वर्ष, 7 अंक, अक्तूबर 2020 ई०

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
डॉ. देवराज शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

विशेष-सूचना

भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु अपना लेख विश्वज्योति में छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

स्वतन्त्र लेखकों, कविता एवं नाटक के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना भेज सकते हैं।

सम्पादक विश्वज्योति

ISSN 0505-7523

प्रकाशक
विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)
(अभिनिर्देशित पत्रिका)
(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै. शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर.

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़.

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर (वि.वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब.

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस.(I) रिटा0, शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर.

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–309, डी.सी. लिंक रोड, होशियारपुर (पंजाब).

दूरभाष : कार्यालय : 01882–223581, 223582, 223606
प्रैस : 01882–231353
संचालक (निवास) : 01882–244750
E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com
मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर
(पंजाब)

निर्णायकमण्डल सदस्य (Review Committee)

- प्रो. रघवीर सिंह, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो. ललित प्रसाद गौड, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा).
- प्रो. प्रेम लाल शर्मा, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).
- प्रो वीरेन्द्र कुमार वेदालंकार, संस्कृत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़.
- प्रो. मुकेश कुमार अरोड़ा, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, लुधियाना (पंजाब).
- डा. सुधांशु कुमार षडंगी, वी.वी.बी. संस्कृत एवं भारतभारती अनुशीलन संस्थान (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब).

ISSN 0505-7523

भारत में एक प्रति का मूल्य : १० रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेषः स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति निःशुल्क नियमतः भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति निःशुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को निःशुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रुः विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रुः तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रुः तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रुः तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेषः- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. शुकदेव शर्मा	मधुरा रम्या भाषा हिन्दी	कविता	८
डॉ. सत्यव्रत वर्मा	यूरोप में संस्कृत का अग्रदूत: चार्ल्स विल्किन्स	लेख	९
श्री विश्वजीत विद्यालंकार	मनोवैज्ञानिक विचार और वेद	लेख	११
डॉ. ऋतुबाला	भारतविजय नाटक में वस्तुविन्यास (सन्धि तथा सन्ध्यङ्ग के सन्दर्भ में)	लेख	१७
डॉ. निर्मल कौशिक	श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मसिद्धांत	लेख	२४
डॉ. आदित्य आंगिरस	सनातन धर्म का समसामयिक अर्थ (एक व्याख्या)	लेख	२८
प्रो. (डॉ.) सुरेन्द्र पाल	काश्मीर शैवदर्शन में पुरुषतत्व का निरूपण	लेख	३२
डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी	भारत-राष्ट्र को जगाने हेतु स्वामी विवेकानन्द की पुकार	लेख	३६
डॉ. उमा रानी	स्वामी विवेकानन्द तथा हिन्दुधर्म	लेख	३९
श्री देवनारायण भारद्वाज	संकल्पना को कल्पना कहना जल्पना है	लेख	४२
	संस्थान-समाचार		४७
	विविध-समाचार		४८
	पुण्य-पृष्ठ		५०-५३

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६९ } होश्यारपुर, आश्विन २०७७; अक्तूबर २०२० { संख्या ७

रयिश्च मे रायश्च मे,
पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे,
विभु च मे प्रभुश्च च मे,
पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे।
कुयवं च मे ऽक्षितं च मे,
अन्नं च मे ऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

(यजुर्वेद. १८.१०)

(मे) मेरा (रयिः) धन और मेरी (रायः) संपत्ति, मेरा (पुष्टं) पालन और मेरा (पुष्टिः) पोषण, मेरा (विभु) वैभव और मेरी (प्रभुः) प्रभुताई, मेरी (पूर्णं) पूर्णता और (उसका उत्तरोत्तर) (पूर्णतरं) अतिशय, मेरे (कुयवं) धान्य की प्रचुरता और मेरी (अक्षितं) अक्षीणता, मेरा अन्न और (अक्षुत्) मेरी तृप्ति (ये सब) (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ के द्वारा समुन्नत हों।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

मधुरा रम्या भाषा हिन्दी

-डॉ. शुकदेव शर्मा

भारत राष्ट्र की भाषा हिन्दी
नवनिर्माण की भाषा हिन्दी
ग्राम-नगर की भाषा हिन्दी
सद्व्यवहार की भाषा हिन्दी
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।

श्रेय-प्रेय की भाषा हिन्दी
स्नेह-मान की भाषा हिन्दी
जनसंवाद की भाषा हिन्दी
श्रेष्ठ ज्ञान की भाषा हिन्दी
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।

योग-क्षेम की भाषा हिन्दी
वाणिज्य-व्यापार की भाषा हिन्दी
न्याय-विधान की भाषा हिन्दी
भ्रातृभाव की भाषा हिन्दी
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।

ज्ञान-विज्ञान की भाषा हिन्दी
साहित्य-सङ्गीत की भाषा हिन्दी
मानस-गोदान की भाषा हिन्दी
प्रसाद-पन्त की भाषा हिन्दी
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।

आचार-विचार की भाषा हिन्दी
विचार-विमर्श की भाषा हिन्दी
आबालवृद्ध की भाषा हिन्दी
हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।

स्वाभिमान की भाषा हिन्दी
आतिथेय की भाषा हिन्दी
जन-जनभाषा भाषा हिन्दी
विश्वप्रिया है भाषा हिन्दी
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।
मधुरा रम्या भाषा हिन्दी।

-साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

विश्वज्योति वर्षः ६९, सं.७

यूरोप में संस्कृत का अग्रदूतः चार्ल्स विल्किन्स

-डॉ. सत्यव्रत वर्मा

इसे संयोग कहिए या विधि का विधान कि इङ्गलैण्ड के समृद्ध व्यापारी का बेटा चार्ल्स विल्किन्स, जो कम्पनी का नौकर बनकर भारत में आया था, वह कालान्तर में यूरोप में संस्कृत-विद्या के प्रवेश-प्रचार का सूत्रधार बनकर इतिहास में अमर हो गया। चार्ल्स विल्किन्स का संस्कृत-विद्या की ओर उन्मुख होना एक आकस्मिक घटना का परिणाम था। 'आरडिनेंसस् ऑफ द पण्डितस्' के लेखक हेलहैड की संस्कृत के प्रति रुचि से उत्साहित होकर विल्किन्स ने संस्कृत सीखने का निश्चय किया और सन् १७७८ में एक 'उदार' पण्डित की सहायता से विधिवत् संस्कृत का अध्ययन आरम्भ कर दिया। अठारहवीं शताब्दी में एक विदेशी के लिये संस्कृत के अध्ययन में आने वाली कठिनाइओं का आज अनुमान करना भी सरल नहीं है। उस समय न आसानी से ग्रन्थ उपलब्ध थे, न अंग्रेजी में लिखित संस्कृतव्याकरण की कोई ऐसी पुस्तक थी जो विदेशी अध्येता का मार्गदर्शन कर सके। इस सब के ऊपर किसी भारतीय पण्डित को विदेशी 'म्लेच्छ' को संस्कृत पढाने के लिये तैयार करना टेढी खीर थी। परन्तु विल्किन्स इन प्रतिकूलताओं से विचलित नहीं हुए। उन्होंने स्वयं प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर अंग्रेजी में संस्कृत-व्याकरण की एक उपयोगी पुस्तक की रचना की, जिसका आज ऐतिहासिक महत्त्व है।

विल्किन्स ने सबसे पहले महाभारत को अपने अध्ययन का विषय बनाया और आदिपर्व के प्रथम ७३१४ पद्यों का अंग्रेजी में अनुवाद भी कर दिया। इस अनुवाद की पाण्डुलिपि आज भी इण्डिया आफिस लाईब्रेरी में सुरक्षित है। कालान्तर में उन्होंने महाभारत के भीष्मपर्व के सुप्रसिद्ध अंश-भगवद्गीता-का अंग्रेजी में अनुवाद करके इस अमूल्य रत्न को यूरोप के लिये सुलभ बना दिया। यह अनुवाद सन् १७८४ में बनारस में सम्पन्न हुआ और अगले वर्ष लन्दन से प्रकाशित हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों में भगवद्गीता का यह अनुवाद किसी उपलब्धि से कम नहीं था। यह गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद था। समूचे यूरोप ने एकस्वर से इसका अभिनन्दन किया। वस्तुतः यह अनुवाद युरोप में संस्कृत-अध्ययन का आदि बिन्दु था। आगे चलकर पूर्वोक्त आदिपर्व के अनुवाद का एक भाग एनल्स ऑफ ओरियेण्टल लिट्रेचर में प्रकाशित हुआ। इससे पहले विल्किन्स शकुन्तलोपाख्यान का अनुवान् भी प्रकाशित कर चुके थे।

उस आराम्भिक युग में विल्किन्स का धर्मशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त होना स्वाभाविक था। उन्होंने मनुस्मृति का गहराई से अध्ययन किया और उसके प्रथम चार अध्यायों का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। विल्किन्स का यह अनुवाद सर विलियम जोन्स के लिये हिन्दु कानून की जानकारी पाने में पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसके बाद विल्किन्स भारतीय शिलालेखों

के अन्वेषण और अध्ययन में जुट गये। उन्होंने सर्वप्रथम बंगाल के पालवंशीय शासक देवपाल के एक ताम्रपात्र का अनुवाद 'एशियाटिक रिसर्चस्' में प्रकाशित किया। इस अनुवाद का महत्त्व इस बात से और बढ़ जाता है कि अब मूल लेख उपलब्ध नहीं है। तत्पश्चात् विल्किन्स चार और अज्ञात अभिलेख खोजने में सफल हुए। इनमें से एक पालवंश का है, दो अनन्त वर्मा के और चौथा अभिलेख गया से प्राप्त हुआ था। विल्किन्स को इन अभिलेखों का अध्ययन करते समय यह आभास भी नहीं था कि वे इस श्रमसाध्य कार्य के द्वारा प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण का श्रीगणेश कर रहे थे।

धीरे-धीरे चार्ल्स विल्किन्स को यह अनुभव होने लगा कि यूरोप में संस्कृत तथा अन्य प्राच्य भाषाओं के प्रसार तथा अध्ययन के लिये केवल अनुवाद पर्याप्त नहीं है। उसके लिये मूल ग्रन्थों को मुद्रित रूप में उपलब्ध करवाना अनिवार्य है। अतः उन्होंने भारत के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स की सहायता और प्रोत्साहन से हुगली में एक प्रैस स्थापित किया जो भारत का पहला छापाखाना था। विल्किन्स ने उसके लिये अपने हाथों से बंगाली तथा फारसी टाइप तैयार किये। इस कला में उनकी नैपुणी को देखते हुए यह हैरानी की बात है कि उन्होंने, भारत में रहते हुए, देवनागरी लिपि का टाइप बनाने का प्रयास नहीं किया। इस गुरुतर कार्य को उन्होंने लंदन लौटने के बाद सम्पन्न किया। विल्किन्स ने स्वरचित संस्कृतव्याकरण को इस देवनागरी टाइप में मुद्रित करना आरम्भ ही किया था कि दुर्भाग्यवश उनके घर में आग लग गयी। देवनागरी टाइप तो उस आग में नष्ट अथवा भ्रष्ट हो गया किन्तु उन्होंने टाइप के सांचे किसी प्रकार घर से बाहर फैंक कर बचा लिये। इन सांचों में पुनः देवनागरी टाइप ढाल कर उन्होंने १८०८ ई. में अपना व्याकरण प्रकाशित किया। यह इङ्गलैण्ड में प्रकाशित होने वाला प्रथम संस्कृत-व्याकरण था। यह संस्कृत के इतिहास की गौरवशाली घटना थी। उससे यूरोप में संस्कृत के प्रवेश का द्वारा खुल गया। सन् १८१५ में विल्किन्स ने संस्कृत-धातुओं पर अपना कार्य प्रकाशित किया। यह संस्कृत-धातुओं पर लिखा गया प्रथम पूर्ण ग्रन्थ था।

विल्किन्स बहुमुखी तथा समर्पित विद्वान् थे। वे एक संस्कृतकोष भी प्रकाशित करना चाहते थे। उसके लिये उन्होंने पर्यायवाची शब्दों का संग्रह भी तैयार कर लिया था। किन्हीं कारणों से वह कोष अधूरा ही रह गया। यदि वह प्रकाशित हो जाता, आज उसका ऐतिहासिक महत्त्व होता।

हितोपदेश विदेशी संस्कृतज्ञों की प्रिय पुस्तक रही है। विल्किन्स ने भी उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया, जो १७८७ ई. में लंदन में प्रकाशित हुआ।

विल्किन्स के कार्य का वास्तविक महत्त्व यह है कि उन्होंने विभिन्न दिशाओं में जिस अध्ययन-अन्वेषण का सूत्रपात किया था, उससे यूरोप में संस्कृत-विद्या के प्रसार का मार्ग प्रशस्त हुआ। यूरोप में संस्कृत-परिशीलन को निश्चित दिशा देने वाले प्रथम विद्वान् विल्किन्स ही हैं। वे सच्चे 'पथिकृद्' थे।

-७/३४, पुरानी आबादी, नामदेव फ्लोर मिल के पास, श्रीगंगानगर (राज०)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

विश्वज्योति वर्ष: ६९, सं.७

मनोवैज्ञानिक विचार और वेद

-श्री विश्वजीत विद्यालंकार

मनोविज्ञान का इतिहास- आधुनिक मनोविज्ञान को जानने से पूर्व उसके इतिहास से भिज्ञ होना आवश्यक है जिससे उसका स्वरूप पूर्णत: स्पष्ट हो सके। वर्तमान में प्रयुक्त 'मनोविज्ञान' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'सायकॉलोजी[१]' का ही पर्याय है। 'सायकॉलोजी' शब्द की निष्पत्ति ग्रीक भाषा के 'सायके[२]' एवं 'लोगसे[३]' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है आत्मविषयक संलाप। अत: प्राचीनकाल में पाश्चात्य देशों में 'सायकॉलोजी' इस विषय में आत्मा के स्वरूप-गति-उत्पत्ति-लयादि सम्बन्धित विचार किया जाता था। यह विषय आध्यात्मिक दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत है, उनका तात्कालिक यही मत था। वे मनन, चिन्तन और अन्तर्निरीक्षण आत्मा के स्वरूप को जानने का मार्ग स्वीकारते थे। अत: मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानवव्यवहार के अध्ययन की आवश्यकता उस काल में नहीं पड़ी होगी।

भारतवर्ष में भी दार्शनिकों व मनीषियों द्वारा आत्मा और मन के विषय में विपुल विचार किया गया। आत्माविषयक विचारों से पूर्ण अनेकों दर्शन-ग्रन्थों का निर्माण हुआ। उपनिषदों से आरम्भ होकर वल्लभाचार्य पर्यन्त आत्मतत्त्व को विवेचित करने वाले अनेकों शास्त्रों की रचना हुई, जिसमें भारतीय मनीषियों ने भी आत्मतत्त्व के ज्ञानार्थ चिन्तन, मनन एवं आत्मनिरीक्षण[४] पद्धति को ही स्वीकारा था।

उन्नीसवीं शताब्दी में संसार में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए जिसमें प्रयोगात्मक विज्ञान की उन्नति विशेष उल्लेखनीय है। ज्ञान के विषय में श्रद्धा व विश्वास का स्थान अब तर्क ने ले लिया। अनुमान के स्थान पर परीक्षण और प्रयोग की प्रतिष्ठा हो गई। इसका प्रभाव इस विषय[५] में भी दृष्टिगोचर हुआ। मानसशास्त्र के स्थान पर इसे मनोविज्ञान नाम से अभिहित किया गया।

अर्वाचीन मनोविज्ञान- पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों का मत रहा है कि दर्शन और मनोविज्ञान दो अलग विषय हैं। लेकिन यह तो ऐतिहासिक सत्य है कि अपने आरम्भ से लेकर कुछ शतियों पूर्व तक विश्व के सभी दर्शनों में मनोविज्ञान सम्मिलित था। विज्ञान के नाम पर भौतिकवादी दृष्टिकोण मनोविज्ञान के दार्शनिक आधार को छोड़ता गया। पहले मनोविज्ञान में आत्मा (सोल) की प्रधानता थी। लेकिन कुछ शतियों के पश्चात् 'आत्मा' को दार्शनिक और धार्मिक प्रत्यय कहा गया और

१. Psychology २. Psyche ३. Logos
४. श्रवण-मनन-निदिध्यासनानि ५. मनोविज्ञान

उसके स्थान पर मन को स्वीकार किया गया। वह मन क्या है, जिसका अध्ययन मनोविज्ञान करता है? इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर न दे सकने के कारण, भौतिकवादियों ने मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय 'जीव का व्यवहार' निश्चित किया। व्यवहार देखा जा सकता है और वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है। इसीलिए मनोविज्ञान के विद्यार्थी को जीवविज्ञान (बायोलॉजी) का अध्ययन करना पड़ता है।

आज पश्चिम के मनोवैज्ञानिक शरीर और मन के आपसी तथा अविछिन्न सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं। डॉ. राईन[६] ने 'मृत्यु के बाद के जीवन' की वैज्ञानिक रीति से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया, पर वे भी मृत्यु के बाद के जीवन का अस्तित्व असत्य घोषित नहीं कर सके।

वैदिक मनोविज्ञान- भारतीय वैदिक मनोविज्ञान में 'आत्मा' को स्वयं सिद्धि से प्राप्त करने का उल्लेख है। भारतीय दर्शन जो कि उपनिषदों का संवर्द्धित रूप है, जिसका कि मनोविज्ञान अभिन्न अङ्ग है, ये कुछ आधारभूत मान्यताओं को लेकर चलता है। इन मान्यताओं का विकास उन भारतीय मनीषियों और दार्शनिकों द्वारा हुआ है जिन्होंनें सत्य का प्रत्यक्ष किया था। दर्शन हमारे देश में बौद्धिक कसरत नहीं वरन् आध्यात्मिक अनुभव तथा सिद्धि है। यद्यपि पश्चिम में जीवन और दर्शन के आपसी घनिष्ठ सम्बन्ध को स्वीकार किया जाता है लेकिन यह सम्बन्ध इतना घनिष्ठ नहीं कि दोनों को अभिन्न कह दें। भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'दर्शन ही जीवन है' की प्रधानता है। वह दर्शन ही क्या जो जीवन का रूप न धारण कर सके। इसीलिए भारतीय मनोविज्ञान-दर्शन जीवन का अभिन्न अङ्ग है। साधन और साध्य तथा जीवन के व्यवहारों, विश्वासों का अध्ययन भारतीय मनोविज्ञान का क्षेत्र है। यदि मनोविज्ञान की पश्चिमी परिभाषा को ही लें तो मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के निमित्त सभी प्रकार के चेतन-अचेतन व्यवहार, चेष्टाएँ और क्रियाएँ हैं।

जीवन के दोनों पक्षों में अन्त: और बाह्य में से अन्त:पक्ष की प्रधानता भारतीय मनोविज्ञान की विशेषता है। आधुनिक पश्चिमी मनोविज्ञान में वैज्ञानिक प्रणाली के प्रभाव के कारण, उन तथ्यों को अस्वीकार किया जाता है जिसे प्रयोग द्वारा सिद्ध न किया जा सके। ऐसी दशा में भारतीय मनोविज्ञान, जो कि आन्तरिक जीवन, अन्त:करण आत्मानुभूति को वास्तविक ज्ञान का आधार मानता है, उनकी दृष्टि में 'मन का विज्ञान' नहीं है। जिस विषय का विस्तार और ज्ञान वस्तुनिष्ठता और प्रयोग-प्रणाली पर आधारित है वह वैज्ञानिक है। इसी कारण वे भारतीय मनोविज्ञान को धर्मशास्त्र (थियौलाजी) का अङ्ग मानते हैं।

वैदिक चिन्तन प्रणाली में जीवन का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। यह आत्मा क्या है? भारतीय मनोविज्ञान में इस पर पर्याप्त विचार मिलते हैं। आधुनिककाल में भी पश्चिम के मनोवैज्ञानिक 'सेल्फ' (आत्मा) के सम्बन्ध में जानने को उत्सुक प्रतीत हो रहे हैं। भारतीय मनोविज्ञान सभी वस्तुओं में रूप और गुण की दृष्टि से विभिन्नता होते हुए भी उसमें एकता देखता है, जिसका कि मनोविज्ञान के गेस्टाल्ट समुदाय के मनोविज्ञानिकों

६. दि अमेरिकन विकली, ८ दिसम्बर, १९५७ में लेख।

ने विरोध किया।

वैदिक और आधुनिक मनोविज्ञानः साम्य व वैषम्य– यह भी जानना आवश्यक है कि भारतीय और आधुनिक मनोविज्ञान में तथ्य-संग्रह की प्रणाली क्या है? आरम्भ में पश्चिमी मनोविज्ञान में जिस प्रकार अन्तःदर्शन पद्धति (इनट्रास्पेक्शन) की प्रधानता थी उसी प्रकार भारतीय मनोविज्ञान के क्षेत्र में सहजबोध (इनट्यूशन) की। अन्तः-दर्शन किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मानसिक क्रियाओं का चेतन, बौद्धिक वर्णन है। इसके विपरीत सहजबोध में किसी व्यक्ति को बिना किसी चेतन मानसिक प्रयास के तुरन्त सहज और भावात्मक रूप से अनुभूति होती है। पश्चिमी मनोवैज्ञानिक सहजबोध को अन्तर्दर्शन की तुलना में कुछ भी मान्यता नहीं देते। जबकि भारतीय मनोविज्ञान की अध्ययन-प्रणाली में सहजबोध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी के साथ वैदिक मनोविज्ञान में ऋषियों के कथनों ओर विचारों को उतनी ही मान्यता प्राप्त है, जितनी की ज्ञान के अन्य स्रोत को। इस प्रकार वैदिक और आधुनिक मनोविज्ञान में तथ्य-संग्रह की दृष्टि से भी अन्तर है। लेकिन इन अन्तरों के होते हुए भी दोनों में विषय की एकता है। दोनों के अध्ययन का विषय मन ही है। मान्यताओं अध्ययन-प्रणालियों और तथ्य-संग्रह पद्धतियों में भिन्नता के होने पर अध्ययन-विषय और उद्देश्य में साम्य है। वैदिक और आधुनिक मनोविज्ञान के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि किस प्रकार मनुष्य अपने आपको जानने के लिए आतुर रहा है। आधुनिक मनोविज्ञान में फ्रायड व उसके अनुयायियों ने जो कुछ जाना उसका आधार वैज्ञानिक प्रणाली नहीं है।

वेद– वैदिक वाङ्मय वह विज्ञान सागर है जिसकी गम्भीरता एवं विस्तार अनन्त है। विज्ञान की प्राचीनतम महत्ता इसी से स्पष्ट है कि ऋषियों ने निर्देशित किया कि '**विज्ञानमुपास्व**' विज्ञान की उपासना करो, '**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म**' आनन्द तथा विज्ञान ब्रह्म स्वरूप है। वेद अर्थात् ज्ञान-भण्डार ही वैदिक-ऋषियों की थाती मानी जाती है। वैदिक मनीषियों ने विज्ञान-साधना का जो आदर्श स्थिर किया, वह आज भी मान्य है। विज्ञान की भाषा नये युग के ज्ञान साधन की भाषा है। विश्व के मूल में जो ज्ञान और बल की क्रिया है, उसको जानने और समझने का लक्ष्य ही दोनों के सामने था। वेद आधुनिक विज्ञान का कोई ग्रन्थ नहीं है। **विविधं ज्ञानं विज्ञानं** अथवा **विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं** की अन्वेषण पुस्तक में सहज उपलब्ध है, सुलभ है। वैदिक अक्षरविज्ञान, पदविज्ञान, ध्वनिविज्ञान, शब्दविज्ञान, वाक्यविज्ञान, चिकित्साविज्ञान, भौतिकीविज्ञान, पादपविज्ञान, जीवविज्ञान, ज्योतिष, नक्षत्र, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, राजनीति, अर्थ, वाणिज्य आदि विविध आयामों के तत्त्व वैदिक वाङ्मय में विद्यमान हैं। वैदिक वाङ्मय अत्यधिक विस्तृत है। वेदों की अनेक शाखाएँ जो अद्यावधि भी अप्राप्त हैं।

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथा वैदिक वाङ्मय– सभी मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त को स्वीकारते हैं कि मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय वह अज्ञात क्षेत्र है, जिसको मनुष्य का व्यवहार कहा जा सकता है। मनोविज्ञान का उद्देश्य वैज्ञानिक रीतियों को अपनाकर मानवीय व्यवहार की स्पष्ट व्याख्या

करना है। मानवीय व्यवहार स्वयं जटिल है और उसके विभिन्न अङ्ग इस प्रकार मिश्रित और परस्पर सम्बन्धित हैं कि उसमें से किसी एक को निश्चित रूप से दूसरे का आधार मानना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अर्वाचीन मनोविज्ञान की कुछ प्रमुख शाखाएं निम्न हैं, जिसका बीजरूप वैदिक वाङ्मय में भी प्रदर्शित होता है–

१. **रचनात्मक मनोविज्ञान**– इस सिद्धान्त के निर्माता प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **विलहेम वुण्ट तथा एडवर्ड ब्रैडफोर्ड टिचनर** माने जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को विभिन्न तत्त्वों में विभक्त करके तथा उन तत्त्वों को पुनः सम्मिलित करके व्यवहार के विश्लेषण तथा संश्लेषण के नियमों का प्रतिपादन करना है। इसमें मनोविज्ञान का सम्बन्ध चेतना के तीन आधारभूत तत्त्वों से है जो कि चेतना की रचना करते हैं– प्रतिमाएँ विचार तथा भाव। इसी प्रकार का वर्णन केनोपनिषद् में भी आया है कि व्यवहार-विश्लेषणहेतु विभिन्न तत्त्वों का अध्ययन आवश्यक है।[७]

२. **कार्यवादी मनोविज्ञान**– यह सिद्धान्त चेतना की रचना के आधारभूत तत्त्वों के विश्लेषण पर बल न देकर व्यवहार की क्रियाशीलता पर एवं मानसिक क्रियाओं की परिवर्तनशीलता पर अधिक बल देता है। इसके समर्थक **हैरल्ड हौफडिंग** तथा **विलियम जेम्ज** जाने जाते हैं। व्यवहार रूप से मन का ऐसा ही अध्ययन यजुर्वेद में प्रस्तुत है–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।[८]

३. **व्यवहारवादी मनोविज्ञान**– १९१४ में होपकिन्स विश्वविद्यालय में डॉ. **वाटसन** द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य मनोविज्ञान को एक संकुचित चेतनामात्र से सम्बन्धित अध्ययन न मानकर बाह्यात्मक, वैज्ञानिक तथा प्रयोगात्मक विधियों पर आधारित विज्ञान बनाना था। उनके अनुसार मनोविज्ञान का यथार्थ सम्बन्ध चेनता के अध्ययन से नहीं अपितु व्यवहार से है अतः उसने अपने सिद्धान्त में प्रतिमा, मन, चेतना आदि शब्दों को कोई स्थान नहीं दिया। व्यवहारवाद में वंशपरम्परा का घोर विरोध और व्यक्तित्व का विकास भौतिक वातावरण पर आधारित है। व्यवहार ही मानव- व्यवहार का कारण है ऐसा वर्णन वैदिक वाङ्मय में नहीं है। यहाँ प्रत्येक कार्य के लिए चेतना ही प्रेरक है।

४. **साहचर्य मनोविज्ञान**– यह सिद्धान्त, व्यवहार का रहस्य क्रियाओं के परस्पर साहचर्य एवं उस अभिन्न सम्बन्ध से है जो कि व्यक्ति अनुभव में प्राप्त करते हैं। हर प्रकार का सीखना अनुभवों का गठन एवं साहचर्य है। स्मृति, विचार एवं कल्पना सब साहचर्य पर आधारित है। इसका प्रतिपादक जर्मन मनोवैज्ञानिक **एबिन गाज** है। ऋग्वेद के संगठन सूक्त में साहचर्य की महिमा है–

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[९]

५. **आकारात्मक/गेस्टाल्ट मनोविज्ञान**– तीन जर्मन मनोवैज्ञानिकों **वर्दीमर, कोहलर** तथा

---

७. केनोपनिषद्, १-५

८. यजुर्वेद, ३४/१

९. ऋग्वेद, १०/१९१

कोफ़्का द्वारा १९१४ में स्थापित इस सिद्धान्त के अनुसार हमारा अनुभव चाहे वह प्रत्यक्षज्ञान हो, चाहे वह स्मृति कदापि तत्त्वों में नहीं होता, अपितु सम्पूर्ण एवं समन्वित होता है।

६. मनोविश्लेषण मनोविज्ञान- इसका प्रतिपादन प्रसिद्ध मानसिक चिकित्सक डॉ. फ्रायड ने किया। उसने मानसिक रोगों का कारण शारीरिक न मानकर मानसिक स्वीकारा। फ्रायड ने यह प्रमाणित किया कि स्वप्नों में दबाई गई इच्छाएँ अवगुण्ठित रूप से उपस्थित होती हैं और अधिकतर वास्तविकता के प्रतिकूल घटनाएँ प्रस्तुत करती हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण की यह विशेषता है कि उसने इच्छाओं के दमन पर आवश्यकता से अधिक बल दिया और उसमें कामवृत्ति सम्बन्धी इच्छाओं को सर्वप्रधान माना।

मन का सर्वाधिक व सूक्ष्म विश्लेषण वैदिक वाङ्मय से लेकर वैदिक दर्शनों में भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। यजुर्वेद (३४ अध्याय) मन का स्पष्ट स्वरूप दर्शाता है। काम को ही सभी मानसिक क्रियाओं की उत्पत्ति स्थल माना गया है।[१०] बृहदारण्यकोपनिषद् में भी मन को ही सभी क्रियाओं का मूल माना है।[११]

मनोविज्ञान का स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र- अर्वाचीन मनोविज्ञान के कार्यक्षेत्र को समझने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण श्रेणी वह है जिससे यह पता चलता है कि मनोविज्ञानी क्या चाहते हैं? इस आधार पर उनकी तीन श्रेणियाँ हैं-

* प्रथम श्रेणी में वे हैं जो शिक्षण कार्य में व्यस्त हैं।
* द्वितीय श्रेणी में वे हैं जो मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर शोध करते हैं।
* तृतीय श्रेणी में वे हैं जो मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर कौशलों तथा तकनीक का उपयोग वास्तविक परिस्थिति में करते हैं। इस प्रकार तीन प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं- शिक्षण, शोध तथा उपयोग।

शिक्षा मनोविज्ञान एवं वेद- शैक्षणिक मनोविज्ञान में शारीरिक विकास की अवस्थाएँ, वंशवाद, वातावरण, मानसिक स्तर, व्यवहार का मुख्यरूपेण अध्ययन किया जाता है। वैदिक वाङ्मय में वंशवाद और वातावरण का प्रभाव पुरुष-सूक्त (ऋग.१०/९०) में वर्णित है। जिज्ञासा जो ज्ञानप्राप्ति का मूल है उपनिषदों का मूल है। वहाँ प्रश्नों से ही चर्चा प्रारम्भ होती है।[१२] निरन्तर अभ्यास व परिश्रम की प्रेरणा भी यजुर्वेद (४०वें) में है।[१३]

व्यक्तित्व मनोविज्ञान एवं वेद- मनोविज्ञान में सर्वप्रथम व्यक्तित्व को जानना आवश्यक माना गया है। इसी प्रकार माण्डूक्योपनिषद् (७) में भी विवेचन आया है-

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्य-वहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमे-कात्मप्रत्ययसारं प्रप्रञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।

व्यक्तिगत विभिन्नता के कारण व्यवहार की

---

१०. ऋग्वेद, ८/७/७, अथर्ववेद- १९/५२/१.

११. कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिऽधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येत्सर्वं मन एव। बृहदारण्यक-१/५/३

१२. ऋग्वेद नासदीय सूक्त (१०.१२१), प्रश्नोपनिषद्, केनोपनिषदादि।

१३. कुर्वन्ने वेह कर्माणि........ (यजु. ईशोपनिषद्)

विभिन्नता का अध्ययन भी प्राप्त है। जैसे-

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।[१४]

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।[१५]

सामुदायिक मनोविज्ञान एवं वेद- कुछ ऐसे कार्यों के द्वारा लोगों को प्रेरणा देना ताकि उनमें स्वतः ही आत्मविश्वास, आपसी-प्रेम, भाईचारा, सहयोग की भावना का विकास हो। ऐसा वर्णन भी वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र मिलता है।[१६]

पर्यावरणीय मनोविज्ञान एवं वेद- व्यक्ति की अन्तःचेतना में प्रेरणा भरकर पर्यावरण के प्रति सचेत करना ही अर्वाचीन मनोविज्ञान का कार्य है। जिसका प्रसङ्ग वाङ्मय में भी मिलता है। यथा- वृक्षों की रक्षा[१७], धरती की रक्षा[१८], पर्यावरणीय संघटक तत्त्वों की रक्षा व संतुलन[१९] का वर्णन भी है।

जैसा कि हमें ज्ञात है, आधुनिक मनोविज्ञान में बुद्धि, मन और शरीर का वर्णन अत्यन्त सीमित है। इसमें बुद्धि के उस स्वरूप का निरूपण नहीं है जिसे वेदान्त में 'प्रज्ञा' कहा गया है। मन की उन वृत्तियों का उल्लेख आधुनिक मनोविज्ञान में नहीं मिलता जिसका वर्णन मनोमय कोश के सम्बन्ध में किया गया है। सुषुप्ति की अवस्था से आधुनिक मनोविज्ञान सर्वथा अनभिज्ञ है। 'स्थिरप्रज्ञ' व्यक्तित्व की कल्पना भी आधुनिक मनोविज्ञान में न के बराबर है। कारण है आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा आध्यात्मिक तत्त्वों की उपेक्षा। वैज्ञानिक पद्धति स्थूल है। इसमें सूक्ष्म का ज्ञान नहीं हो सकता। आधुनिक मनोविज्ञान के विद्यार्थियों को वैदिक दार्शनिक मनोविज्ञान का कुछ परिचय अवश्य होना चाहिए जिससे उन्हें ज्ञात हो कि उनका मनोविज्ञान कितना सीमित है। आशा है, इससे जिज्ञासा उत्पन्न होगी और वैदिक मनोविज्ञान का सुचारू रूप से अनुसंधान किया जा सकेगा।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि मनोविज्ञान के इतिहास का आरम्भ सर्वप्रथम आत्मा से हुआ फिर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान मन की ओर गया। मन के बाद मानव के व्यवहार की ओर ध्यान दिया गया और फिर मन तथा शरीर के सम्मिलित प्रभावों का अध्ययन होने लगा और अब मनोवैज्ञानिक मन से परे जाने का प्रयास कर रहे हैं, जो वैदिक मनोविज्ञान के '**आत्मा वा परे द्रष्टव्यः**' की ओर जाने का सङ्केत है। आधुनिक मनोविज्ञान के विकास में वैदिक साहित्य महनीय भूमिका निभा सकते हैं यदि वे विज्ञानानुकूल प्रयास करें। इसका भावी विकास मनुष्य के आध्यात्मिक तथा नैतिक जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा और वैदिक वाङ्मय पुनः अपने खोये गौरव को प्राप्त कर सकेगा।

-संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-११०००७। मो: ९२१३५-७३२१२

१४. ऋग्वेद, १०.७१.४. १५. वही, १.१६४.४६.
१६. संगच्छध्वं संवदध्वं.....। द्यौःशान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः....। जीवेमः शरदः शतं.....।
१७. मा काकम्बीरम् उद्वृहो वनस्पतिम्। अशस्तीर्वि हि नीनशः। ऋग्-६.४८.१७.
१८. माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। अथर्व १२.१.१२., पृथिवी माता द्यौष्पिता। यजु. २.१०.११.
१९. त्रीणि छन्दासि कवयो वियेतिरे, पुरुरूपं दर्शनं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि। अथर्व १८.१.१७.

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523 विश्वज्योति वर्षः ६९, सं.७
अक्तूबर, २०२०

भारतविजय नाटक में वस्तुविन्यास (सन्धि तथा सन्ध्यङ्ग के सन्दर्भ में)

-डॉ. ऋतुबाला

आधुनिक संस्कृतनाट्यविधा की पावनभूमि पर पण्डित मथुराप्रसाद जी की लेखनी एक ऐसी गङ्गाधारा है, जिससे समग्र आधुनिक संस्कृतसाहित्य प्रक्षालित हुआ है। मथुराप्रसाद दीक्षित ने अपनी रचनाओं से संस्कृतसाहित्य की और उज्ज्वल किया है। इनकी रचनाएं निम्नलिखित हैं-

I. नाटक-

१.प्रतापविजय, २. भारतविजय, ३. पृथ्वीराजविजय, ४. शङ्करविजय, ५. गांधीविजय, ६. भूभारोद्धरण, ७. भक्त सुदर्शन, ८. भ्रष्टाचार साम्राज्य

II. मुक्तक काव्य-

१. कविता रहस्य, २. काव्यकला, ३. अन्योक्तितरङ्गिणी, ४. भगवत्-चरणोत्प्रेक्षा

III. कामशास्त्र-

१. केलि कुतूहल (मूलमात्र)

२. केलि कुतूहल (हिन्दी अनुवाद सहित)

IV. आयुर्वेद- १. रोगीमृत्युविज्ञान।

V. दर्शन- मातृदर्शन।

VI. व्याकरण- १. पाणिनीय सिद्धान्तकौमुदी (मूलमात्र), २. पाणिनीय सिद्धान्तकौमुदी (कारकान्त, हिन्दी अनुवाद), ३. पालि प्राकृत व्याकरण, ४. प्राकृत प्रकाश (सरल हिन्दी व्याख्या साहित्य), ५. सन्धि समास मञ्जूषा (हिन्दी), ६. समास चिन्तामणि।

VII. धर्मशास्त्र- १. नारायणबलि निर्णय २.नारायणबलि निर्णय कुतर्क तरुकूठम् ३.काशी शास्त्रार्थ (हिन्दी अनुवाद सहित) ४. मन्दिर-प्रवेश निर्णय (संस्कृत में) ५. मन्दिरप्रवेश निर्णय (हिन्दी में) ६. कलिदूतमुखमर्दन ७.वर्ण-सङ्करजाति निर्णय ८. जैनरहस्य ९.कौल वाम समीक्षा (अप्रकाशित)।

VIII. विविध- १. अत्रि निर्वचनम् २. पृथ्वीराज रासो -प्र.द्वि.भाग हिन्दी ३. पृथ्वीराज रासो- प्र. भा. हिन्दी अनुवाद सहित।

इन रचनाओं में से भारतविजय नाटक मथुरा प्रसाद दीक्षित की सुप्रसिद्ध कृति है, जिसमें उन्होंने औपनिवेशिक उत्पीड़न, अत्याचार तथा शोषण के बोझ को उखाड़ फेंकने का शङ्खनाद है। वस्तुतः काव्य के दो प्रकार हैं (१) श्रव्य काव्य (२) दृश्य काव्य[१]। श्रव्य काव्य दो प्रकार का होता है। (१) पद्यमय (२) गद्यमय[२]

१. सा. द.- ६.१.

२. वही, ६.३१३.

I. पद्यात्मक काव्य पांच प्रकार का होता है[३]-

(१) मुक्तक (२) युग्मक (३) संदानिक (४)कलापक (५) कुलक इसके अतिरिक्त पद्य-काव्य के महाकाव्य और खण्डकाव्य दो भेद हैं[४]।

II. गद्यकाव्य चार प्रकार का होता है-

(१) मुक्तक (२) वृत्तगन्धि (३) उत्कलिकाप्राय (३) चूर्णक[५]। इसके अतिरिक्त गद्यकाव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद हैं[६]।

दृश्यकाव्य- अभिनय के योग्य काव्य दृश्य-काव्य कहलाता है।[७] इस दृश्य काव्य को रूप[८], रूपक[९], नाट्य[१०] नामों से भी जाना जाता है। रूपक के दश भेद किए जाते हैं-

नाटकं प्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।[II]

रूपकों के दस भेद प्रत्येक की वस्तु, नेता और रस की भिन्नता के कारण हैं।[११] रूपक के प्रथम भेद नाटक का लक्षण करते हुए साहित्यशास्त्रियों ने कहा है कि- नाटक की कथा (वृत) ख्यात, इतिहासादि में प्रसिद्ध होनी चाहिए जो कथा केवल कविकल्पित है, इतिहाससिद्ध नहीं है वह नाटक नहीं हो सकती। नाटक में विलास समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन होना चाहिए। सुख और दुःख की उत्पत्ति का तथा अनेक रसों का वर्णन नाटक में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें पांच से लेकर दस तक अंक होते हैं। इसमें धीरोद्धात्त, प्रतापी, गुणवान् कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादित्य पुरुष नाटक का नायक होता है। शृंगार या वीर इनमें से कोई एक रस इसमें प्रधान रहता है। अन्य सब रस अङ्गभूत रहते हैं[१२]।

भारतविजय नाटक के कथानक का स्रोत एवम् ऐतिहासिकता-

भारतविजय नाटक का कथाबिम्ब स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता के ताना-बाना के आसपास ही सिमट कर सफलीभूत होता है। भारतमाता के गौरवांचल में जो सुख-शान्ति तथा समृद्धि की घनी छाया थी, उसे अंग्रेजों ने अपनी कूटनीतिज्ञता से सदा के लिए उजाड़ दिया। फलतः भारतीय जनता के बीच रोजी-रोटी की समस्या आ खड़ी हो गयी; जबकि भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। इस हाहाकार की स्थिति में जनसाधारण की भावना को राष्ट्रीयोन्मुख करना दीक्षित जी के लिए स्वाभाविक हो गया। नाटककार इसके कथानक के रूप में स्वतन्त्रताप्राप्ति हेतु किये जाने वाले तीव्र संघर्ष के दिनों का चित्रण उपस्थित करता है। अतः प्रस्तुत नाटक में राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति और भारतीय जनता की दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

---

३. सा. द.- ६.३१४. ४. वही, ६.३१५-३२४.
५. वही, ६.३३०-३१. ६. वही, ६.३३२-३३३ तथा वही, ६.३३४-३३५.
८. वही, ६.१. ८. रूप दृश्यतयोच्यते (दशरूपक-१.७).
९. रूपकं तत्समारोपात् (वही-१.७). १०. अवस्थानुकृतिर्नाटयम् (वही-१.७). II. वही, १.८.
११. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदको। (दशरूपक-१.१०). १२. साहित्यदर्पण-६.७-१०

कथानक के प्रकार- सभी रूपकों में अनुकरण की स्थिति रहती है। वस्तु, नेता तथा रस के भेदों के कारण रूपक के भेदों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इनमें वस्तुभेद दो तरह के होते है। (१) आधिकारिक कथावस्तु (२) प्रासङ्गिक कथावस्तु।[१३]

१. आधिकारिक कथावस्तु- फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है, तथा उस फल का स्वामी अधिकारी। फलभोक्ता द्वारा फलप्राप्ति तक निर्वाहित वृत्त या कथा आधिकारिक वस्तु कहलाती है।[१४] भारतविजय नाटक की विषयवस्तु राष्ट्रीयता की भावना उजागर कर भारतमाता की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ फेंकना है जो कथावस्तु आदि से अन्त तक चलती है। अतः नाटक की आधिकारिक कथावस्तु भारतवर्ष को आजाद करना है।

प्रासङ्गिक कथावस्तु- जो कथा दूसरे प्रयोजन के लिए होती है; किन्तु प्रसङ्ग से जिसका स्वयं का फल भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासङ्गिक कथावस्तु कहलाती है।[१५] प्रासङ्गिक कथावस्तु का मुख्य उद्देश्य आधिकारिक वृत्त के फल निवर्हन में सहायता प्रदान करना है; किन्तु प्रसङ्गतः उसका स्वयं का भी फल होता है। भारतविजय नाटक में भारतीय जवानों, वीराङ्गनाओं ने जो देश की आजादी के लिए मिलजुल कर आत्मबलिदान किया,[१६] जगह-जगह पर अपनी कुर्बानियां, आत्मोत्सर्ग का उपहार भारतमाता के आँचल में अर्पित किया जिससे स्वतन्त्रतासंग्राम की धारा अबाध गति से अतिप्रवाहमान हो गई, उन्हें प्रासङ्गिक कथावस्तु के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

सन्धि, सन्ध्यङ्ग के सन्दर्भ में नाटक का विश्लेषण-

सन्धि- जिस प्रकार बिखरे प्रसूनों को धागे से पिरोकर माला को तैयार किया जाता है, उसी प्रकार पृथक्-पृथक् कथाभागों को धागे में बाँधने का कार्य सन्धियाँ करती हैं। सभी साहित्यचार्यों ने भरत नाट्यपरम्परा को मानते हुए सन्धियों की संख्या पाँच बतायी है।[१७]

दीक्षित जी ने पांच अर्थप्रकृतियों और कार्यावस्थाओं के संयोग से बनी सन्धियों का यथास्थान विधान कर नाट्यपरम्परा का पालन किया है।[१८] इन्होंने कथाप्रवाह को बनाये रखने के लिए मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण सन्धियों को प्रस्तुत नाटक में यथास्थान समायोजित किया है।

प्रस्तुत लेख में भारतविजय नाटक का वस्तुविन्यास, सन्धि तथा सन्ध्यङ्ग मात्र लिखा जा रहा है।

I. मुखसन्धि- जहां नाना अर्थ एवं रस उत्पन्न करने वाली बीज नामक प्रथम अर्थप्रकृति की उत्पत्ति हो वहां बीज (अर्थप्रकृति) और आरम्भ नामक कार्यावस्था के समन्वय से बनी हुई सन्धि

१३. दशरूपम्-१.११.
१४. वही-१.११.
१५. वही, १.१२-१३.
१६. भारतविजय-पृ. १५२.
१७. ना.श.-३.१९.३७.
१८. द.रू.१.२२.

मुखसन्धि होती है। भारतमाता की स्वतन्त्रता तथा रक्षा के लिए अपनी सारी सुख-सुविधाओं को भूलकर भारतीय जनमानस का समरभूमि में कूदना[१९] तथा भारतमाता को नेपाली सखी के द्वारा आजादी प्राप्ति के लिए सम्भावना व्यक्त करना प्रस्तुत नाटक की मुख सन्धि[२०] है।

(i) उपक्षेपमुखसन्धि- रूपक के आरम्भिक अंश में जब कवि बीज का न्यास करता है तो उसे उपक्षेपसन्धि कहते हैं।[२१] नेपाली सखी द्वारा भारतमाता को आजादी के लिए सान्त्वना देते हुए कहना कि आपने ही रघु, नहुष, सगर, तिलक, महात्मा गांधी, जवाहरलाल, अब्दुलकलाम, खुदीराम आदि को जन्म दिया है।[२२] अतः भारतवर्ष निकट भविष्य में ही आजाद हो जाएगा। इन महापुरुषों की चर्चा उपक्षेप माना जाना चाहिए; क्योंकि इन्हीं नेताओं ने आगे चलकर यहां के जनसाधारण की सहायता से भारतवर्ष को आजाद किया।

(ii) परिकर- जब बीज न्यास का बाहुल्य पाया जाय तो उसे परिकर या परिक्रिया कहते हैं।[२३] जगह-जगह विदेशी कपड़ों को जलाया जाना[२४] खुदीराम द्वारा अंग्रेज पर बम फेंका जाना[२५] तथा चौराचोरी घटना आदि को परिकर माना जा सकता है।

(iii) विलोपन- जब फल से सम्बन्धित किसी वस्तु के गुणों का वर्णन किया जाय तो उसे विलोपन कहते हैं।[२६] गाँधी जी तथा अंग्रेजों के बीच जो भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान के श्रेष्ठता विषयक कथनोपकथन को दर्शाया गया है। उस वार्तालाप को विलोपन कहा जा सकता है। क्योंकि गाँधी जी भारतवर्ष की आजादी प्राप्त करने के लिए अपने देश की क्षमता की उद्‌घोषणा करते हैं।

महात्मागांधी:- वयं स्वयमेव योग्या भविष्यामः।

पूरुः- न किञ्चिदपि नवीनमाविष्क्रियते।

महात्मागांधी:- अत्रास्माकं पराधीनतैव कारणम्।[२७]

(iv) युक्ति- जहां पात्र के अभीष्ट तथ्यों की अवधारण या समर्थन किया जाय वहां युक्ति होती है।[२८] अंग्रेज के इस्तमरारी पट्टे के द्वारा कृषकों के शोषण तथा उत्पीड़न को भारतमाता के द्वारा भर्त्सना किए जाने पर[२९] तथा फिर बालगङ्गाधर

---

१९. भारतविजय-अध्याय १, पृ.२१.

२०. वही पृ. १४.

२१. काव्यार्थस्य समुत्पत्तिरूपक्षेप इति स्मृतः। सा.द. ६.८३.

२२. नेपाली सखी। उत्पादयिष्यन्ते च तिलकमालवीयलाजपतरायगाँधीजवाहरलालप्रभृतयः। भारतविजय-अ.१, पृ.१७.

२३. समुत्पन्नार्थबाहुल्यं ज्ञेयः परिकरः पुनः। सा.द., ६.८३.

२४. मालवीयः- पथ्य, इङ्गलैण्डैः सहासन्तुष्टैरसहयोगदृढैस्ते सूनुभिर्वैदेशिकानि वस्त्राणि दाहयन्ते। भारतविजय षष्ठअध्याय, पृ. १६६

२५. खुदीः मया स तु भ्रमाद् हतः नाहं तं हन्तुमैच्छम्। वही, पृ. १५०

२६. गुणाख्यानं विलोभनम्- द.रू. १.२७.

२७. भारतविजय- षष्ठ अध्याय, पृ. १६०.

२८. संप्रधारणभर्थाना युक्तिः। द.रू. १.२८.

२९. भारतविजय, षष्ठ अध्याय, पृ. १४४.

तिलक का समर्थन करते हुए कहना कि धन की अभिलाषा से सन्तप्त पुरुषों के लिए कौन-सा कार्य निन्दनीय है?[३०] ऐसा समर्थन ही युक्ति है।

(v) आगम- जहां फल की प्राप्ति की आशा में सुख का आगम हो वहां प्राप्ति नामक मुखाङ्ग होता है।[३१] तिलक द्वारा भारतमाता की प्रसन्नता का कारण[३२] पूछे जाने पर उनका कहना कि अखिल भारतीय कांग्रेज की स्थापना से मुझे काफी प्रसन्नता हो रही है क्योंकि देश-देशान्तर के रहने वाले भारतवासी इसके माध्यम से भारतवर्ष में हो रहे अंग्रेजी अत्याचार का पर्दाफास कर देश को आजाद करेंगे।[३३] अतः देश की आजादी के लिए सुखद कामना का अनुभव आगम है।

II प्रतिमुखसन्धि- जब बिन्दु, अर्थप्रकृति और यत्न कार्यावस्था संयुक्त होकर कार्यशृंखला को अग्रसर करें तो वह प्रतिमुखसन्धि कहलाती है।[३४] प्रतिमुखसन्धि में मुखसन्धि में दिखाये गये बीज का कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य रीति से उद्‌भेद रहता है। भारतमाता के उत्पीडन के त्राणार्थ बङ्गाल में सिराजुद्दौला के प्रार्दुभाव से आजादी की एक नयी उम्मीद का जागना लेकिन उनके पतन से आशा का धूमिल होना। प्रतिमुख सन्धि के कथाप्रवाह से जोड़ा जा सकता है।[३५] प्रतिमुख सन्धि के १३ भेद होते हैं। लेकिन दीक्षित जी ने कुछ भेद-प्रभेद को ही नाटक में समाविष्ट किया है।

(i) परिसन्धि- बीज का दृष्ट होकर नष्ट होना और उसकी खोज की जाय तो वह परिसर्प कहलाती है।[३६] सिराजुद्दौला तथा मीर कासिम आदि के पतन के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा कुछ मन्थर-सी हो गयी तथा उत्साह भी लगभग समाप्त प्राय हो गया था। इसी बीच मङ्गल पाण्डेय, बाजपेयी आदि वीरों की सैनिक बगावत ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को पुनजीर्वित कर दिया।

पाण्डेय: रे रे जागृत ! जागृत !!

क्षितिभृतः शौर्यं समाश्रीयतां गौराङ्गा धनलोलुपा भृशमिमे लुण्ठन्ति सर्वात्मना।[३७]

(ii) नर्मद्युति- धैर्य की स्थिति नर्मद्युति कहलाती है।[३८] इसके अन्तर्गत पात्र में धैर्य का सञ्चार पाया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में कभी चौराचोरी तो कभी जलियाँवाला बाग काण्ड जैसी दुर्घटनाएं घटीं, ऐसा लगने लगा कि अब भारत के लोग अंग्रेजो के उत्पीड़न तथा गुलामी के बोझ से हमेशा दबे रहेंगे। लेकिन इन सब हादसाओं के बावजूद महात्मा गाँधी का चित्त विचलित नहीं हुआ और इसी धैर्य का परिणाम था कि

---

३०. भारतविजय-अध्याय ६, पृ: १४४.

३१. प्राप्तिसुखागमः। द.रू. १.२९.

३२. तिलकः (प्रणम्योपविश्य च) मातः। किमपि चिन्तयन्ती सुप्रसन्नेव प्रतिभासि?-भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १४३.

३३. भारतमाता-मन्ये तत्र नीतिनिपुणा बहवो विद्वांसो गत्वाऽस्मदीयाभिलषितं साधयिष्यन्ति। भारतविजय, अध्याय ६, पृ.१४३

३४. द. रू.-१.३०.

३५. भारतविजय, द्वितीयअध्याय, पृ. ४८.

३६. दृष्टनष्टानुसर्पणम्-द.रू.१.३२.

३७. भारतविजय-अध्याय ५, पृ. १२६.

३८. वृत्तिस्तज्याद्युतिर्मता- द.रू.१.३३.

अन्ततः देश उनके नेतृत्व में आजाद हुआ।

(iii) प्रगमन- जहां पात्रों में परस्पर उत्तरोत्तर वचन पाये जाते हैं वहां प्रगमन होता है।[३९] जर्मनी युद्ध के बाद भारतीय जनता द्वारा देश की आजादी तथा संग्राम में मरे उत्तराधिकारियों की पेंशन की माँग[४०] आदि के प्रत्युत्तर में अंग्रेजों का कहना कि उन्हें जो इनाम देना था, दे दिया गया, इससे अधिक कुछ नहीं मिलेगा।[४१] इस पर गाँधी जी द्वारा क्रुद्ध होते हुए यह कहकर प्रतिकार करना कि प्राणों की बाजी लगाकर भी रोलट एक्ट को समाप्त करवाऊँगा[४२], इस कथनोपकथन को प्रगमन कहा जा सकता है।

(iv) वज्रः- जहां नायकादि के प्रति कोई प्रत्यक्ष रूप से निष्ठुर वचन का प्रयोग करे वे वाक्य वज्र कहलाते हैं।[४३] मालवीय जी द्वारा अंग्रेज से कह पूछे जाने पर कि जलियाँवाला बाग काण्ड में उन लोगों के पास और गोली होती तो क्या करते[४४] जिसके प्रत्युत्तर में उसका यह जवाब देना कि यदि तोप में जाने वाली और भी गोलियां होतीं तो उन सभी को मरे हुओं पर पुनः चलायी जातीं।

यूरूपियन- अपरा अभविष्यंश्चेद् गुलिकास्तुपकानुगाः।
तदाऽहं सकला एताः प्रैरयिष्यं मृतेष्वपि।।[४५]

(v) गर्भसन्धिः- जहां पूर्व सन्धियों में कुछ प्रकट हुए और कुछ छिपे हुए बीज का पुनः अन्वेषण किया जाये[४६] वहां गर्भसन्धि होती है। यह सन्धि १२ अङ्गों वाली होती है। इस सन्धि में पताका (अर्थप्रकृति) तथा प्राप्ति-सम्भव (अवस्था) का मिश्रत्र होता है; लेकिन कुछ नाटकों में पताका प्रयोग दिखाई देता है तथा कुछ में नहीं। किन्तु प्राप्तिसम्भव का होना बहुत जरूरी है। देश की आजादी के लिए भारतीय सैनिकों द्वारा सशस्त्र विद्रोह करना और कुछ समय के लिए लगना कि आजादी मिल जाएगी। लेकिन उसका विफल होना और आजादी की लड़ाई के तीसरे चरण में गाँधी जी द्वारा अहिंसा के माध्यम से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को नया मोड़ देना और देश को स्वतन्त्रोन्मुख करना गर्भसन्धि मानी जा सकती है।[४७]

गर्भसन्धि के १२ भेदों में से भारतविजय नाटक में अभूताहरण[४८], अनुमान[४९], तोटक[५०], उद्वेग[५१] दृष्टिगोचर होते हैं।

---

३९. उत्तरा वाक्यप्रगमनम्- द.रू. १.३३.
४०. भारतविजय-षष्ठअध्याय, पृ. १५९.
४१. वही, पृ. १५९.
४२. महात्मा गांधी-स्वप्राणदण्डेनापि रोलटनियमं नाशयिष्ये। वही, पृ. १६०.
४३. वज्रप्रत्यक्षनिष्ठुरम्- द.रू. १.३५.
४४. मालवीय-यद्यपरा अभविष्यन्? भारतविजय-अ. ६, पृ.१६४.
४५. वही, ६.१६.
४६. सा. द.-६.७८.
४७. भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १६२.
४८. अभूताहारणं छद्म। द.रू. १.३८., द्र. भारतविजय, अध्याय १, पृ. २६.
४९. अभ्यूहो लिङ्गतोऽनुमा। द.रू. १.४०., द्र. भारतविजय, अध्याय १, पृ. ५.
५०. संरब्धं तोटकं वचः। द.रू.१.४०., द्र. भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १६५.
५१. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः। द.रू. १.४२., द्र. भारतविजय, अध्याय ५, पृ. १३३.

iv. अवमर्शसन्धि- जहां क्रोध से, व्यसन से या विलोभन से फल की प्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाय तथा गर्भसन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया जाए वहां अवमर्शसन्धि होती है।[५२] विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों ने भारतवासी से जर्मनी के विरुद्ध-सहायता मांगी और वायदा किया कि विजयोपरान्त हम भारत को आजाद करा देंगे। लेकिन ऐसा न कर रोलट एक्ट लगा कर भारतवासियों की भावना से खिलवाड़ किया। इसके प्रतिकार के रूप में पूर्ण आजादी की मांग तथा अंग्रेजों के साथ प्रत्येक मुद्दे पर असहयोग की भावना जगाना आदि को अवमर्शसन्धि के अन्तर्गत रखा जा सकता है।[५३]

भारतविजय नाटक में अवमर्शसन्धि के अपवाद[५४], संफेट[५५], विद्रव[५६], द्रव[५७], छलन[५८], व्यवसाय[५९], भेद प्राप्त होते हैं।

V. निर्वहण सन्धि- रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुखादि अर्थ जो अब तक इधर-उधर बिखरे होते हैं और जब उनको अर्थ के लिए एक साथ समेटा जाता है या एकत्र किया जाता है तो वह निर्वहण सन्धि होती है।[६०] भारतविजय नाटक का कथाबिम्ब राष्ट्रीय भावना को उजागर कर देश से अंग्रेजों को बाहर निकालना है। भारतीयों के सहस्र बलिदानों के बाद अंग्रेज भारत छोड़कर जाते समय कहते हैं कि तुम अपने अधिकार का उपभोग करो और मुझे हृदय से क्षमा करो।[६१] स्वतन्त्रता आन्दोलन के इस अन्तिम पड़ाव को निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत रखा जा सकता है। क्योंकि इस नाटक का बिम्ब राष्ट्रीय आन्दोलन को समग्ररूपेण प्रतिबिम्बित करना है तथा स्वतन्त्रताप्राप्ति इसका फल है।

-एसोसिएट प्रोफेसर, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड. आई. एस. (पं. वि. पटल),
साधु आश्रम, होशियारपुर

---

५२. दशमरूपम्-१४३.
५३. महात्मा गाँधी-सर्वैरपि राष्ट्रियसभासद्भिः प्रबन्धकतायास्त्यागपत्रं दीयताम्। भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १६८.
५४. दोषप्रख्यापवादः स्यात्। द.रू.१.४७., द्र. भारतविजय, अध्याय २, पृ. ५३.
५५. संफेटःरोषभाषणम्, द.रू. १.८४. द्र. भारतविजय, अध्याय २, पृ. ६०.
५६. विद्रवो वधबन्धादिः द.रू.१.८५. द्र. भारतविजय, अध्याय ३, पृ. ७३.
५७. द्रवो गुरुतिरस्कृतिः। द.रू.१.४५. द्र. भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १६०.
५८. द.रू.- १.४६, द्र. भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १४९.
५९. द.रू.- १.४७, द्र. भारतविजय, अध्याय ६, पृ. १६८.
६०. दशरूपकम्-१.४९.
६१. उपभुङ्क्ष्व स्वाधिकारं हृदयेन क्षमस्व माम्। भारतविजय, अध्याय ७, पृ. १७९.

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मसिद्धांत

-डॉ. निर्मल कौशिक

श्रीमद्भगवद्गीता भले ही हजारों वर्ष पूर्व भगवान् श्री कृष्ण द्वारा कर्म-विमुख अर्जुन को दिया गया उपदेश हो तो भी आज उसकी उतनी ही उपयोगिता है। आज भी प्रत्येक मानव 'अर्जुन' के ही समान कर्त्तव्य-विहीन और निरुत्साहित हो मोहपाश से ग्रसित है। **किंकर्त्तव्यविमूढ** जैसी स्थिति में मानव को 'गीता' के माध्यम से भगवान् कृष्ण कहते हैं '**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज**।' गीता को सामान्य-जन केवल कर्म-प्रेरक ग्रन्थ के रूप में जानता है। गीता केवल कर्म का प्रेरक ग्रन्थ ही नहीं है। इसमें भगवान् ने 'कर्म और कर्मफल' के महत्त्व को दर्शाते हुए मोक्ष पाने का मार्ग प्रशस्त किया है। कर्म को योग के रूप में बताकर '**योगः कर्मसु कौशलम्**' की महत्ता को दर्शाया। 'गीता से जुड़ें' पत्रिका में डॉ. बृजेश सिंह कहते हैं कि श्री कृष्ण ने गीता के उपदेश में मानव को अहंकार से रहित होकर अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करने का निर्देश दिया है। कर्म करना अपने वश में है, परन्तु फल जगत्-नियन्ता के अधिकार के क्षेत्र में है। मनुष्य अपने सारे कर्म ईश्वर को समर्पित कर मुक्ति और सुख का अनुभव कर सकता है। जिस धन, सम्पदा, ऐश्वर्य पर वह अहंकार करता है, वह न जाने कब विनष्ट हो जाय।

'यज्ञ' को गीता में कृष्ण ने मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी बताया है। 'यज्ञ' देवों के लिए सम्मान देने वाला और समाज के लिए उन्नति का मार्ग और कल्याणकारी है। वैचारिकी पत्रिका में डॉ. योगेन्द्र भानु लिखते हैं- यज्ञीय कर्म का तात्पर्य भी हम यहां के यौगिक अर्थ के सन्दर्भ में ही लेंगे अर्थात् ऐसे कर्म जो श्रद्धापूर्वक सत्य-निष्ठा से देवों का सम्मान करने वाले समाज के हितकारी एवं त्याग की भावना से सम्पादित कर्म ही यज्ञीय कर्म है। ऐसे कर्म करते हुए व्यक्ति कर्म-बन्धन में नहीं फंसता है।[1]

गीता- संवादात्मक शैली में रचित एक साहित्यिक विरासत के रूप में कृष्ण जी की 'अमरवाणी' है। यह आध्यात्मिक ज्ञानकोष के रूप में मानव की पिपासा को शान्त करने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। डॉ. सत्यपाल शर्मा- विश्वज्योति के 'जीवन वाला अंक' में कहते हैं कि 'श्रीमद्भगवद्गीता विश्व की ज्ञान-पिपासा को शान्त करती है और उसे जीने की कला भी सिखाती है।'

हजारों वर्ष बीत जाने पर भी इस शाश्वत सन्देश ने

१. गीता, ४.२३.

मनुष्यों के ज्ञानचक्षु खोलकर उन्हें कर्म का महत्त्व बताया। जीवन जीने की कला सिखाई और मानव-जीवन को सार्थक करने का मार्ग प्रशस्त किया। गीता हर वर्ग, हर समाज, हर देश के हर प्राणी के लिए सदैव ज्ञान और कर्म का सन्देश प्रसारित करती रहेगी।

भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन! गीता मेरा हृदय है। गीता मेरा उत्तम सार है। गीता मेरा सर्वोत्तम निवास है। गीता मेरा परमपद है। गीता मेरा परम रहस्य है। गीता ही मेरा परम गुरु है। अर्जुन को मोक्षदायिनी गीता के प्रति श्रद्धावान् होने की प्रेरणा दी। आज के इस तनावग्रस्त और पथ-भ्रष्ट जीवन में मानव निराशा और हताशा के द्वन्द्व में 'किंकर्त्तव्य विमूढ' की स्थिति में पहुँच गया है। गीता इस कलियुग में मानव का पथ आलोकित कर उसे लक्ष्य तक पहुँचने में सहायक सिद्ध होती है। तभी तो महर्षि व्यास ने कहा है-

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिः सृता[२]।।

अर्थात् जो स्वयं श्री विष्णु भगवान् के मुख से निकली है उस (गीता) को भली भाँति कण्ठस्थ करना चाहिए। अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या लाभ?

जो मनुष्य गीता के एक अध्याय, एक श्लोक अथवा एक चरण का भी नित्य पाठ करता है वह मन्वन्तर तक मनुष्यता को प्राप्त करता है। गीता की इतनी महिमा जानने के पश्चात् मन में यह जिज्ञासा आना स्वाभाविक ही है कि गीता में ऐसा है क्या जिसे श्री कृष्ण जी ने इतना महत्त्व दिया है। अगर हम ध्यानपूर्वक पढें तो प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में ही हमें संकेत मिल जाता है कि भगवान् ने इस ग्रन्थ में क्या सन्देश दिया है-

अर्थात् धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा कि हे संजय धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे और पाण्डु-पुत्रों ने क्या किया? इस श्लोक में धर्मभूमि और कुरु कर्मभूमि, युद्धभूमि अर्थात् कर्म, धर्म और संघर्षभूमि अर्थात् आधार को ही इस ग्रन्थ का विषय बनाया गया है। अन्तिम पंक्ति में किम् अकुर्वत- क्या किया? से सामान्य मानव! के लिए संकेत है कि जीवन के संघर्ष में हे मानव! तुमने क्या किया? वास्तव में यह महाभारत हमारे अन्दर ही चल रहा है। हमारे हृदय में ही भगवान् का निवास है। जब हमारा मनरूपी अर्जुन विचलित और कर्त्तव्य-विमुख हो जाता है तो विवेकरूपी श्री कृष्ण उसे उपदेश देते हैं और उसे धर्म अर्थात् सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। जब हम दुविधा अनिर्णय और असमंजस की स्थिति में होते हैं तो हमारे परिवार के लोगों में बैचेनी, असंतोष, जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। ऐसी स्थिति में हमें नीति-अनीति का ध्यान भी रखना पड़ता है और हम जो निर्णय लेंगे उसी के अनुसार कार्य भी चुनना पड़ेगा। गीता में कार्य के प्रति अनासक्ति और फलत्याग का जो प्रेरक सन्देश दिया गया है, वही वास्तव में निष्काम

२. श्रीमद्भगवद्गीता- सन्त श्री आसाराम जी आश्रम, पृ. ३७.

कर्मयोग कहलाता है। यह एक प्रयोगात्मक विषय है और मानव जीवन को सफल बनाने हेतु अत्यन्त उपयोगी है। गीता का सार भी यही है कि हे मनुष्य! कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फल में नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा कर्म न करने में भी तेरी आसक्ति न हो।[3] गीता वास्तव में मानव को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करती है मानव को ढांढस और सान्त्वना प्रदान करती है। आत्मा की अमरता, शरीर की नश्वरता तथा संसार के मिथ्या होने का सन्देश मानव को लक्ष्य तक पहुँचाने का मार्ग आसान बना देता है।

निःस्वार्थ भाव से अनासक्ति युक्त किया गया निष्काम कर्म ही कर्मयोग है। वास्तव में सम्पूर्ण गीता-ज्ञान इसी विषय पर केन्द्रित है। गीता का प्रत्येक अध्याय योग के किसी न किसी प्रारूप पर आधारित है गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में योग के एक विशिष्ट प्रारूप का उल्लेख किया गया है।

गीता के १८ अध्यायों में कुल ८०० श्लोक है। इन सभी श्लोकों में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक उस जीव को विषाद और निराशा के समय अपने कर्त्तव्यपथ से विचलित न होने का प्रेरक सन्देश दिया है। कर्म करते हुए अनासक्त रहने और फल की इच्छा में लिप्त न होने में योग को आधार बनाया है। 'योग' के विषय में कहा गया है- **योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः** अर्थात् चित की वृत्तियों का निरोध ही योग है। जब तक साधक शरीर मन और बुद्धि को शुद्ध कर आत्मा के पूर्ण विकास से इन्हें शुद्ध नहीं कर लेता है। तब तक शान्ति व विवेक की सिद्धि सम्भव नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को सब ओर से अपने मन को हटाकर एकाग्रचित होकर अपने कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। सभी वेदों पुराणों, उपनिषदों और धर्म ग्रन्थों में सत्कर्म करने के लिए ही प्रेरित किया गया है।[4]

लेकिन इस बात का निर्णय कैसे हो कि सत्कर्म कौन-सा है। इसके लिए गीता में ही समाधान किया गया है कि स्वधर्म का पालन करो स्वधर्म का पालन ही श्रेयस्कर है- अर्थात् अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे के धर्म भय देने वाला है।[5]

इस प्रकार स्वधर्म में प्रवृत्त सत्कर्म करने वाला व्यक्ति पुण्य का भागी होकर मोक्ष को प्राप्त होता है और ईश्वर से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। यही वास्तव में कर्मयोग है। एकाग्रचित्त होकर कर्म-कौशल ही योग कहलाता है- **'योगः कर्मसु कौशलम्'** यही गीता का निष्काम कर्मयोग है जो विचलित मन को एकाग्र करने में सक्षम है। गीता में श्री कृष्ण ने पाप-मुक्त होने का सरलतम उपाय बताते हुए निष्काम कर्मयोग का मार्ग सुझाया है। इससे भी सरलतम उपाय है ईश्वर के प्रति समर्पण भाव से किए गए कर्म।[6]

---

३. गीता, २.४७.   ४. बृहत् संस्कृत निबन्धमणि, पृ.१०३.   ५. वही, ३.३५.   ६. वही, १८.६६.

इसी परिप्रेक्ष्य में भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन से पंचम अध्याय में कर्म-संन्यास-योग तथा तृतीय अध्याय में कर्मयोग का वर्णन करते हुए दोनों को ही कल्याणकारी बताया है और कर्म-संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग को साधन-सुगम और श्रेष्ठ बताया है। भक्तियुक्त कर्मयोग के लिए श्री कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से इसकी विस्तृत व्याख्या छठे अध्याय में की है और कर्मफल का आश्रय न लेकर कर्म करने वाले पुरुष को ही संन्यासी और योगी कहा है अर्थात् जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है। वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है।[७]

भगवान् श्री कृष्ण ने केवल एक अर्जुन को ही यह गीता का सन्देश नहीं दिया यह आज के सन्तप्त, तनावग्रस्त, निराश और हताश मानवरूपी अर्जुन के लिए उतना ही सार्थक और महत्त्वपूर्ण है जितना उस युग में था। गीता का निष्काम कर्मयोग उन सभी मनुष्यों को प्रेरणा और सम्बल प्रदान करता है जो अर्जुन की तरह मोहपाश में आसक्ति के कारण अपने कर्त्तव्यपथ से भटक गए हैं और सत्कर्म करने से पीछे हट गए हैं। आज मानव सद्साहित्य से विमुख हो गया है। हमें गीता जैसे पावन ग्रन्थों का अध्ययन कर प्रेरणा लेनी चाहिए। हमारे सभी महान् साधकों और महानुभावों ने गीता का अध्ययन करके ही अपने जीवन को सत्कर्मों से अलंकृत किया है। गीता के अनुसार श्री कृष्ण कहते हैं कि जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवादरूप गीताशास्त्र को पढ़ेगा उसके द्वारा मैं भी ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा। ऐसा मेरा मत है।[८]

यही गीता के पठन, श्रवण का माहात्म्य है। गीता के निष्काम कर्मयोग को जीवन में धारण कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। यही ईश-प्राप्ति का सरलतम मार्ग है। भगवान् ने अर्जुन के साथ-साथ सामान्य मानव के लिए भी निष्काम कर्मयोग का मार्ग प्रशस्त किया है। वे कहते हैं कि- हे अर्जुन! तू अनासक्त हुआ निरन्तर कर्त्तव्यकर्म का अच्छी प्रकार आचरण कर, क्योंकि अनासक्त पुरुष, कर्म करता हुआ, परमात्मा को प्राप्त होता है।[९]

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता मानव के कल्याण-हेतु अर्जुन और श्री कृष्ण का ऐसा संवाद है जो मानव के अन्तर्द्वन्द्व को परिलक्षित करता है। भगवान् ने अर्जुन को जो सन्देश दिया है वह आज के परिवेश में भी उतना ही प्रासंगिक और सार्थक है जितना महाभारत काल में था। अतः हमें गीता का सम्मान करते हुए भगवान् श्री कृष्ण के बताए हुए कर्त्तव्य-पथ पर चलकर अपना मानव-जीवन सार्थक करना चाहिए।

-१६३, आदर्श नगर, ओल्ड कैन्ट रोड, फरीदकोट। मो: ९९१५७-०२८४३

७. गीता, ६.१.　८. वही, १८.७.　९. वही, ३.१९.

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

विश्वज्योति वर्षः ६९, सं.७

सनातन धर्म का समसामयिक अर्थ (एक व्याख्या)

-डॉ. आदित्य आंगिरस

सनातन धर्म के विषय में कुछ भी कहने से पूर्व यहां अपनी धर्म-विषयक धारणा स्पष्ट करना आवश्यक बन जाती है कि धर्म का वास्तविक रूप और संभव वास्तविक अर्थ क्या हो सकता है। क्या धर्म एवं मजहब, एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हुए समान अर्थ वाले हैं अथवा दोनों शब्दों का अर्थ एवं संदर्भ एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। यह प्रश्न मेरे सामने इसलिये उपस्थित होता है क्योंकि धर्म एवं मजहब दोनों ही शब्द प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं जबकि दोनों शब्दों में भेद स्पष्ट दिखाई देता है।

यह तो सर्वविदित तथ्य है कि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है जो लगभग ईसा से पहले से प्रचलित थी। भारतीय संस्कृति में जहां एक ओर मनुष्य के कर्तव्यकर्मों का विशद विश्लेषण हुआ है वहीं दूसरी ओर धर्म को मानवीय संस्कृति से संबंधित कर भी आंकने का प्रयास किया गया है। वैदिक साहित्य के संदर्भ में ये कर्म जहाँ इष्ट और आपूर्त की श्रेणी में रखे गये, वहीं दूसरी ओर उत्तरोत्तर साहित्य में कर्म एवं धर्म की विशद व्याख्या भी करने के भरसक प्रयास किये गये। धर्म जहाँ एक ओर विश्वास एवम् आस्था को द्योतित करता है वहीं दूसरी ओर मनुष्य को उसके निश्चित कर्तव्य को भी दर्शाता है। वस्तुतः धर्म संस्कृतभाषा का शब्द है जो कि धारण करने वाली धृ धातु में मन् प्रत्यय के योग से बना है।[1] और जो 'धार्यते इति धर्मः' के संदर्भ में प्रयुक्त होता है अर्थात् वे जीवनाधारित गुण जो धारण किये जायें वही वास्तविक धर्म है, इस संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है। अथवा हम यह कह सकते हैं कि लोक-परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु पवित्र गुणों के माध्यम से सत्कर्मों का सेवन करना धर्म हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि धर्म मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली एक मर्यादित पद्धति है। यह मैं ऐसा इसलिये लिख रहा हूँ क्योंकि जैमिनि मुनि के मीमांसा दर्शन के दूसरे सूत्र में धर्म का लक्षण है- लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु गुणों और कर्मों में प्रवृत्ति की प्रेरणा ही धर्म का लक्षण है।[2] वहीं वैदिक साहित्य में धर्म वस्तु के स्वाभाविक गुण तथा कर्तव्य के संदर्भ में भी आया है, जैसे जलाना और प्रकाश करना अग्नि का धर्म है और प्रजा का पालन और रक्षण राजा का धर्म है। यद्यपि मनुस्मृति धर्म की परिभाषा करते हुए लक्षणाधारित बात करती है कि-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शोचं इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[3]

अर्थात् धैर्य, क्षमा, मन को प्राकृतिक प्रलोभनों में फँसने से रोकना, चोरी त्याग, शौच

१. पाणिनि ऋषि।
२.मीमांसादर्शन।
३. मनुस्मृति, ६.९२.

(पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह, ज्ञान प्राप्त करना, विद्या, सत्य और अक्रोध (क्रोध न करना) धर्म के दस लक्षण हैं। वहीं दूसरी ओर महाभारत में **आचारः परमो धर्मः** अर्थात् श्रेष्ठतम आचरण ही परम धर्म है कहकर धर्म को द्योतित्त किया गया है।[४] वहीं दूसरी ओर महाभारत में ही एक अन्य स्थान पर '**धारणाद् धर्ममित्याहुः, धर्मो धार्यते प्रजाः**' का भी संदर्भ दिया गया है अर्थात् जो धारण किया जाये और जिससे प्रजाएँ धारण की हुई हैं, वह धर्म है। वैशेषिक दर्शन के ग्रन्थों में मुनि कणाद ने धर्म का लक्षण यह किया है '**यतोऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः**' कहकर धर्म शब्द को व्याख्यायित किया गया है अर्थात् धर्म वह तत्त्व है जिससे मनुष्य के अभ्युदय अर्थात् लोकोन्नति और निश्रेयस अर्थात् मोक्ष की सिद्धि होती हो केवलमात्र वह धर्म है। यह मैं ऐसा इसलिये कह रहा हूँ क्योंकि ऐकान्तिक मुक्ति की कामना केवल और केवल हिन्दू धर्म की ही देन है जबकि विश्व के सभी संप्रदायों में सामूहिक मुक्ति की भावना प्रचलित है। अतः उपर्युक्त को यदि हम ध्यान से देखें तो हम धर्म और मजहब में निम्नांकित अन्तर कर सकते हैं कि धर्म और मजहब समान नहीं हैं और न ही धर्म विश्वास का पर्यायवाची शब्द है। वास्तविक धर्म जहां क्रियात्मक रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है वहीं दूसरी ओर मजहब के विषय में हम कह सकते हैं कि यह इसकी सत्ता विश्वासात्मक है। धर्म यदि मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल होने के कारण स्वाभाविक है जिसका आधार ईश्वरीय अथवा सृष्टि नियम है वहीं मजहब विश्वासात्मक सत्ता होने के कारण अप्राकृतिक है। यहां यह हम मान सकते हैं कि मजहब का भिन्न-भिन्न होना तथा परस्पर विरोधी होना मनुष्य की सोच पर निर्भर है क्योंकि सभी व्यक्ति समानरूप से सोचने की क्षमता नहीं रखते हैं।

धर्म का अर्थ होता है- जिसे धारण किया जा सके। वास्तव में धर्म की यह कर्मप्रधान व्याख्या है। लिखने का अर्थ है कि जो तत्त्व मानवीय गुणों को प्रदर्शित करे, वास्तविक रूप में वही धर्म है। अतः धर्म को गुणप्रधान भी कह सकते हैं। यहां उल्लेखनीय है कि धर्म शब्द में गुण अर्थ केवल मानव से संबंधित नहीं। पदार्थ के लिए भी धर्म शब्द प्रयुक्त होता है यथा पानी का धर्म है बहना, अग्नि का धर्म है प्रकाश, उष्मा देना और संपर्क में आने वाली वस्तु को जलाना। व्यापकता के दृष्टिकोण से धर्म को गुण कहना सजीव, निर्जीव दोनों के अर्थ में नितांत ही उपयुक्त है। धर्म सार्वभौमिक होता है। पदार्थ हो या मानव पूरी पृथ्वी के किसी भी कोने में बैठे मानव या पदार्थ का धर्म एक ही होता है। इसके देश, रंग रूप की कोई बाधा नहीं है। धर्म सार्वकालिक होता है यानी कि प्रत्येक काल में युग में धर्म का स्वरूप वही रहता है। धर्म कभी बदलता नहीं है एवं शाश्वत एवं नित्य है। उदाहरण के लिए पानी, अग्नि आदि पदार्थ का धर्म सृष्टिनिर्माण से आज पर्यन्त समान है। धर्म और सम्प्रदाय में मूलभूत अंतर है। धर्म का अर्थ जब गुण और जीवन में धारण करने योग्य होता है तो वह प्रत्येक मानव के लिए समान होना चाहिए। जब पदार्थ का धर्म सार्वभौमिक है तो मानवजाति के लिए भी तो

४. महाभारत, १,१०८.

इसकी सार्वभौमिकता होनी चाहिए। अत: मानव के सन्दर्भ में धर्म की बात करें तो वह केवल मानव-धर्म है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, जैन या बौद्ध आदि धर्म न होकर सम्प्रदाय या सम्प्रदायमात्र हैं। 'सम्पद्राय' एक परम्परा के मानने वालों का समूह है।

इन्हीं सन्दर्भों में यह लिखना भी उचित होगा कि मजहब एक अरबी शब्द है जो इस्लाम के उन सम्प्रदायों को द्योतित करता हैं, जो इस्लामी विधिशास्त्र (फ़िक़्ह) के आधार पर अलग-अलग हैं अर्थात् वे अलग-अलग समूह है, जिनकी मान्यता कमोबेश किन्ही अर्थों में थोड़ी भिन्न है। मध्य एशिया के इतिहास का अध्ययन करने से एक तथ्य हमारे सामने स्पष्ट रूप से आता है कि इस्लाम के उद्‌भव के प्रथम १५० वर्षों में अनेकों महजब उत्पन्न हो चुके थे। उसके बाद के वर्षों में इनकी संख्या में और वृद्धि हुई, कुछ का प्रसार हुआ, कुछ कई भागों में टूट गये और कुछ दूसरे संप्रदायों में मिल गये या अप्रचलित हो गये। वस्तुत: यहां मजहब शब्द का प्रयोग मत-मतान्तर अथवा पंथ के ही संदर्भों में प्रयुक्त होता आया है जिसके अनेक अर्थ हैं जैसे वह रास्ता जो स्वर्ग और ईश्वर प्राप्ति का है और जो कि मजहब के प्रवर्तक ने बताया है। अनेक जगहों पर ईमान अर्थात् विश्वास के अर्थों में भी आता है। इसके विपरीत यदि हम धर्म को देखें तो धर्म शब्द का फलक बहुत ही व्यापक प्रतीत होता है।

जो अपने अनुकूल न हो वैसा व्यवहार दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये- यह धर्म की कसौटी है। इसलिए कहा गया है कि- धर्म का सर्वस्व क्या है, सुनो और सुनकर उस पर चलो। अपने को जो अच्छा न लगे, वैसा आचरण दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये।[5]

उपर्युक्त मानवधर्म का पालन करने वाला हिन्दू-समुदाय विश्व के सभी बड़े समुदायों से सबसे पुराना है। यह समुदाय पहले आर्य (श्रेष्ठ) नाम से संबोधित किया जाता था। इस समुदाय की कई मान्यताएँ वेदों पर आधारित हैं, यह समुदाय अपने अन्दर कई अलग-अलग उपासना पद्धतियाँ, मत, सम्प्रदाय को मानने वालों को समेटे हुए है। ये दुनियां का तीसरा सबसे बड़ा समुदाय है, पर इसके ज्यादातर लोग भारत में हैं और विश्व का सबसे अधिक हिन्दुओं का प्रतिशत नेपाल में है। हालाँकि इस समुदाय के लोगों द्वारा कई देवी-देवताओं की पूजा की जाती है, लेकिन असल में ये एकेश्वरवादी धर्म है।

इस समुदाय के लोग स्वयं को सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म मानने वाला कहते हैं। इंडोनेशिया में इस धर्म का औपचारिक नाम 'हिन्दु आगम' है। हिन्दू केवल एक सम्प्रदाय ही नहीं है अपितु जीवन जीने की एक पद्धति है। लोगों का मानना है कि 'हिंसायाम् दूयते य: स हिन्दू' अर्थात् जो अपने मन, वचन, कर्म से हिंसा से दूर रहे व हिन्दू है।[6]

वात्स्यायन ने धर्म और अधर्म की तुलना

५. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वां चैवावधार्यताम्। आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।। महाभारत

६. भूताभयप्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात्। दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव तथा भवेत्।। संवर्त: ५३.
नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। अत: सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते।। कल्याण धर्मशास्त्रांक, पृ. २३
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।। मुंडकोपनिषद्, २.२.८.

करके धर्म को स्पष्ट किया है। वात्स्यायन मानते हैं कि मानव के लिए धर्म मनसा, वाचा, कर्मणा होता है। यह केवल क्रिया या कर्मों से सम्बन्धित नहीं है, बल्कि चिन्तन और वाणी से भी संबंधित है।

* शरीर का अधर्म- हिंसा, अस्तेय, प्रतिसिद्ध मैथुन
* शरीर का धर्म- दान, परित्राण, परिचरण (दूसरों की सेवा करना)
* बोले और लिखे गये शब्दों द्वारा अधर्म- मिथ्या, परुष, सूचना, असम्बन्ध
* बोले और लिखे गये शब्दों द्वारा धर्म- सत्व, हितवचन, प्रियवचन, स्वाध्याय
* मन का अधर्म- परद्रोह, परद्रव्याभीप्सा (दूसरे का द्रव्य पा लेने की इच्छा), नास्तिक्य
* मन का धर्म- दया, स्पृहा (Disinterestedness),
* श्रद्धा

जैन ग्रंथ, तत्त्वार्थसूत्र में १० धर्मों का वर्णन है। यह १० धर्म इस प्रकार हैं- उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य।

सनातन धर्मः (हिन्दू धर्म, वैदिक धर्म) अपने मूलरूप हिन्दू धर्म के वैकल्पिक नाम से जाना जाता है। वैदिक काल में भारतीय उपमहाद्वीप के धर्म के लिये 'सनातन धर्म' नाम मिलता है। 'सनातन' का अर्थ है- शाश्वत या 'हमेशा बना रहने वाला', अर्थात् जिसका न आदि है न अन्त। सनातन धर्म मूलतः भारतीय धर्म है, जो किसी जमाने में पूरे बृहत्तर भारत (भारतीय उपमहाद्वीप) तक व्याप्त रहा है। विभिन्न कारणों से हुए भारी धर्मान्तरण के बाद भी विश्व के इस क्षेत्र की बहुसंख्यक आबादी इसी धर्म में आस्था रखती है। सिन्धु नदी के पार के वासियों को ईरानवासी हिन्दू कहते हैं, जो 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे। उनकी देखा-देखी अरब हमलावर भी तत्कालीन भारतवासियों को हिन्दू और उनके धर्म को हिन्दू धर्म कहने लगे। भारत के अपने साहित्य में हिन्दू शब्द कोई १००० वर्ष पूर्व ही मिलता है, उसके पहले नहीं। हिन्दुत्व सनातन धर्म के रूप में सभी धर्मों का मूलाधार है क्योंकि सभी धर्म-सिद्धान्तों के सार्वभौम आध्यात्मिक सत्य के विभिन्न पहलुओं का इसमें पहले से ही समावेश कर लिया गया था।

अतः यह कहना सही होगा कि 'धर्म' एवं सम्प्रदाय अथवा मजहब शब्द समानार्थक नहीं हैं। यहां यह भी कहना समीचीन होगा कि धर्म शब्द का पश्चिमी भाषाओं में समानार्थक शब्द अभी तक अनुपलब्ध है। इसका संभव कारण यह हो सकता है कि- भारतीय संस्कृति ने धर्म को जहां कर्तव्य कर्म के साथ जोड़ा वहीं धर्म को श्रेष्ठतम मानवीय गुणों के साथ भी जोड़ने का प्रयास किया। अतः धर्म शब्द का साधारण शब्दों में प्रमुख अर्थ है- कर्तव्य, अहिंसा, न्याय, सदाचरण, सद्-गुण आदि। गौतम ऋषि कहते हैं- जिस काम को करने से अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म है।[7]

-हिन्दी प्रवक्ता, वी.वी.बी. आई. एण्ड आई. एस., साधु आश्रम, होशियारपुर

७. यतः अभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः- न्यायदर्शन

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

काश्मीर शैवदर्शन में पुरुषतत्व का निरूपण

-प्रो. (डॉ.) सुरेन्द्र पाल

'आत्मा' भारतीय दर्शन का बहुत ही महत्त्वपूर्णं तत्त्व है। वेद, उपनिषद् तथा विभिन्न भारतीय दर्शनों में इसके स्वरूप का व्यापक वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में बताया गया है कि सृष्टि के समस्त प्राणी, नक्षत्र, देवी-देवता, जड-चेतन सम्पूर्ण पदार्थ एक ऐसे पुरुष के अंग हैं जो सारे जगत् में व्याप्त तथा उससे बाहर भी विद्यमान है। कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की द्वितीय वल्ली में भी यमराज के द्वारा नचिकेता को 'आत्मतत्त्व' के स्वरूप का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। वहाँ इसे नित्य, ज्ञानस्वरूप, अजन्मा, अविनाशी, नित्य, शाश्वत, पुरातन, अणु से भी अणु तथा विभु अर्थात् एकही समय में सर्वत्र विद्यमान रहने वाला कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में आत्मा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। वह वर्णन भी कठोपनिषद् के आत्मवर्णन से ही प्रभावित दिखाई पड़ता है।

काश्मीरीय शैवदर्शन में आत्मा के दो रूपों का वर्णन हुआ है। एक है समष्टिगतआत्मा[१] तथा व्यष्टिगत आत्मा[२]। आत्मा के इन दो रूपों में यहाँ आत्मा के दूसरे रूप को काश्मीरीय शैव-दर्शन में पुरुषतत्त्व के रूप में जाना जाता है। यह काश्मीरीय शैवदर्शन के तत्त्वों के विकास-क्रम में १२वें तत्त्व के रूप में वर्णित मिलता है। इस दर्शन में 'पुरुष' को अणु, पशु, मायीय प्रमाता, पुंस्तत्त्व, संसारी और नर आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। 'अणु' संकुचित को कहते हैं। इसी तरह पुरुष के अन्य नाम भी इस तत्त्व की किसी न किसी विशेषता के ही द्योतक हैं। दूसरे 'पशु' शब्द का अर्थ है - 'परिछिन्नतया पश्यति इति पशुः' अर्थात् सीमित दृष्टि से देखता है। अतः पहले 'अणु' नाम का कारण इस दर्शन की तत्त्वमीमांसा के छतीस तत्वों में से छठे मायातत्त्व के द्वारा शिवतत्त्व के स्वरूप में लाया गया संकोच या अणुता है। जिसे वह (माया) अपने ही पाँच कंचुकों के द्वारा लाती है। वे पाँच कंचुक हैं :- कला, विद्या, राग, काल और नियति। माया के इन्हीं पांचों कंचुकों के प्रभाव के कारण ही परमशिव (समष्टिगत आत्मा) अपनी स्वभावगत पाँच

१. चैतन्यमात्मा- शिवसूत्र; १.१.

२. आत्मा चित्तम्- वही; ३.१.

विशेषताओं (शक्तियों) - सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, पूर्णत्व (नित्यतृप्ति), नित्यत्व और व्यापकत्व (स्वातन्त्र्य) से क्रमशः किंचित्कर्तृत्व, किंचित्ज्ञत्व, कुछ वस्तुओं के प्रति आसक्ति, अनित्यत्व और देश और काल के बन्धनों को धारण कर आभासित होने लगता है। यह सीमांकन कार्य कंचुकों द्वारा सम्पादित होता है। इन्हीं मायीय पाँचों कंचुकों से कंचुकित हुआ परमशिव एक अन्य पुरुषतत्त्व की तत्त्वदशा के रूप में प्रकट हो जाता है।

इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार महाचेतना (चैतन्य) परमशिव अथवा समष्टिचेतना जोकि सर्वकर्त्ता, सर्वज्ञ, पूर्ण, नित्य तथा व्यापकत्व आदि शक्तियों की यद्यपि आश्रयस्थान तथा प्रतिष्ठा है; फिर भी विश्वविस्तार के समय अपने स्वरूप का तिरोधान कर अपने आप को अपने ही स्वातन्त्रय से कला, विद्या, राग, काल और नियति आदि रूपों में अभिव्यक्त कर देती है।[3] इसी अभिव्यक्ति के फलस्वरूप चैतन्य अपनी ही इच्छास्वातन्त्र्य से ससीम और संकुचित अहंप्रकाशरूपी मायीय अर्थात् पुरुष के रूप में आ जाती है। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि इतना होने पर भी समष्टि आत्मा का रूप चैतन्य अपने मूल रूप में जैसे का तैसा ही बना रहता है; इसके साथ-साथ वह व्यष्टिगत चेतना - जिसे 'पुरुष' कहा जाता है - के रूप में आकर सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् में भी अवतरित हो जाता है। इतना होने पर भी परमचैतन्य व्यष्टिचेतना के रूप में आकर भी अपने वास्तविक रूप से थोड़ा-सा भी च्युत नहीं होता। बल्कि ऐसा करने पर भी वह अभेद और भेद दोनों रूपों में वर्तमान रहता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर शैवदर्शन में यह कहा जाता है कि- **'भोक्तैव भोग्यरूपेण संस्थितः'** अर्थात् भोक्ता ही भोग्यरूप में अवतरित होता है, परन्तु यह सब सूक्ष्मक्रम से घटित होता है। इसी सूक्ष्म प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपनी चेतना की चैतन्यता का भी आनन्द लेता है तथा साथ-साथ परमशिव के अनुत्तर स्थान से सकल पुरुषप्रमाता की भूमिका में भी अवतरित हो जाता है। इससे परमेश्वरीय आत्मा, अकल भूमि से सकल तक के खेल को खेल भी लेती है तथा किसी को पता नहीं चलता तथा परमशिव अपनी स्वतन्त्रेच्छा से अपनी परिपूर्णता तथा उसके नित्य स्वभाव को छिपाकर अपने आप को अनेक अल्पज्ञ जीवों के रूप कर डालता है।

इस प्रक्रिया में काश्मीरीय शैव दर्शन की ज्ञानमीमांसा एक नये रूप में आ जाती है, जिसके फलस्वरूप जीव बन्धन में बँधकर अनेक कर्मों को करता हुआ विभिन्न योनियों का भोग करता रहता है। जिससे जीव तीन मलों में

३. .... प्रत्यभिज्ञाहृदय; ९ (संस्कृत टीका)।

बँध जाता है। वे तीन मल हैं:- आणव, मायीय, और कार्मण। मल अज्ञान को कहते हैं।[४] इस दर्शन में अज्ञान ज्ञान के अभाव को न कहते हुए अधूरे अर्थात् संकुचित ज्ञान को कहते हैं।[५] आत्मा वस्तुतः शुद्ध स्वभाव वाला होता है। परन्तु जब वह स्वलीलावश स्वरूप का तिरोधान कर अज्ञान को अर्थात् अशुद्ध तथा असीमित ज्ञान को अपना लेता है तभी वह जीव के रूप में आभासित होने लगता है। इसी रूप में आभासित होने पर वह अपने आप पर संसारी, अणु, मायीयप्रमाता, पशु, संकोचबद्धात्मा का आवरण डालकर संसारी, जीव और प्राणी की भूमिकाओं को निभाता हैं।[६]

इस भूमिका पर अवतरित हुआ आत्मा उन सभी पंचकृत्यों को पूरा करता रहता है जिन भूमिकाओं को आत्मा विश्वोत्तीर्ण भूमिका में सदा निभाता रहता है। हाँ, इतना जरूर है कि उन कृत्यों में पशुप्रमाता (पुरुष) की भूमिका पर ससीम रूप में भी पूरा करता है। क्योंकि पशु-प्रमाता की भूमिका में वह पूर्ण शक्ति से सम्पन्न न होकर शक्तिदरिद्र बन जाता है।[७] इसी शक्तिदरिद्रता के कारण जीव अपने स्वातन्त्र्य से वियुक्त होकर परतन्त्र बन जाता है। इसी परतन्त्रता के कारण वह सब कुछ अपने से भिन्न समझने लगता है और मायाप्रदत्त जीव की भेदबुद्धि में विस्तार हो जाता है। इसी कारण वह भिन्नतामय वातावरण की प्रत्येक वस्तु को अपनी समझता हुआ परमात्मा से दूर हो जाता है। अपि च, संसारी सांसारिकताओं में उलझा रहना ही उस जीव की नियति बन जाता है। इतना ही नहीं, वह प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुख, दु:ख और मोह को ऐसे पकड़ लेता है कि जैसे यही उसके लिए अन्तिम सत्य हो। इतना ही नहीं, वह जीव मन, बुद्धि और अहंकार नामक अन्त:करण की प्रत्येक क्रिया को अपना समझ लेता है। इससे वह बन्धन में पड़ा हुआ विपरीतताओं, भेदों और मानसिक विसंगतियों का शिकार होने लगता है। जिस वस्तु को सत्य समझकर वह उसकी प्राप्ति की ओर दौड़ा करता है, फिर वह उन्हीं से ही मुक्त होना चाहता है।

कश्मीरीय शैवदर्शन के अनुसार बद्ध जीव, जब ईश्वरीय कृपा से शैव शास्त्रों के अध्ययन से और गुरुकृपा (अनुग्रह) से यह समझ लेता है कि यह सारा बन्धन उसी के अज्ञान के कारण है। तो वह पहले तो पौरुष ज्ञान के द्वारा पौरुष विषयक अज्ञान से मुक्त होता है।[८] अनन्तर बौद्ध ज्ञान के द्वारा बौद्ध

४. मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराकुंरकारणम्। मालिनीविजयतन्त्र, १.२३

५. तंत्रालोक, १.२५-२६.

६. प्रत्यभिज्ञाहृदय, ६.

७. स्पन्दकारिका, ४.१५.

८. तंत्रालोक १.८,४९.

अज्ञान से मुक्ति प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाता है। उसके बाद वह जीवन्मुक्त अवस्था का आनन्द लेता हुआ अन्ततः शरीर की समाप्ति के पश्चात् विदेहमुक्त होकर शिवभाव के साथ एक हो जाता है।[९]

काश्मीरीय शैव दर्शन के अनुसार शिव और पुरुष में कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनों में भेद केवल इतना है कि शिव शुद्ध चैतन्यरूप है और पुरुष अशुद्ध और अधूरी चेतना। शिव कंचुकों से रहित है और पुरुष कंचुकों से युक्त चेतना। पहला पाशरहित है तो दूसरा पाशयुक्त। शिव निर्मल चेतना है और पुरुष मलिन चेतना। एक विश्वातीत और विश्वमय है तो दूसरा केवल विश्वमय। पारमेश्वरीय विलास ही केवल ऐसा है, जो पुरुष के रूप में अवतरित होता है, जबकि पुरुष पारमेश्वरीय चेतना में शुद्धज्ञान के द्वारा ही एकत्व का लाभ प्राप्त कर सकता है। एक पूर्णस्वतन्त्र है और दूसरा अणुता और पुर्यष्टक (मन, बुद्धि, अहंकार तथा पाँच तन्मात्राओं का) के कारण परतन्त्र है। शिव अपने स्वस्वातन्त्र्य से पंचकृत्यकारी हैं तथा पुरुष भी अपने दायरे में पंचकृत्यों को करने में समर्थ है।

काश्मीरीय शैवदर्शन की पुरुष संबन्धी उपरोक्त विचारधारा दूसरे भारतीय दर्शनों से कुछ साम्य रखने पर अपनी मौलिकता से युक्त होने पर भी इसकी अन्य दर्शनों से निम्नलिखित भिन्नतायें हैं। सांख्य के मतानुसार पुरुष में क्षोभ का कारण प्रकृतितत्त्व है। परन्तु काश्मीरीय शैवदर्शन के अनुसार पुरुषतत्त्व में क्षोभ का कारण अचेतन प्रकृति न होकर शिवतत्त्व की प्रेरणा और उसका स्पन्द होता है।[१०] सांख्यदर्शन के अनुसार प्रकृति त्रिगुणात्मक है, जबकि शैवदर्शन में शिव की तीन शक्तियाँ- ज्ञान, क्रिया और माया ही ससीम होकर पुरुष, के तीन गुणों में परिणत हो जाती हैं।[११] दोनों के ही मतानुसार 'पुरुष' सत्य है। अद्वैत वेदान्त में 'पुरुष' पांच कोशों से युक्त है और शैवदर्शन में पंचकंचुकों से युक्त है। वेदान्त के मत में पुरुष (जीव) आभासमात्र है, जबकि शैव-दर्शनानुसार 'पुरुष' लघुशिव तथा देहस्थ शिव ही है। इस प्रकार शैवदर्शन के अनुसार शिव और पुरुष में केवल आभासगत अन्तर होने पर भी दोनों एक हैं। इस प्रकार काश्मीरीय शैवदर्शन में पुरुषतत्त्व का निरूपण दूसरे आस्तिक दर्शनों से पृथक् तथा एक पराद्वैतिक दृष्टि को ध्यान में रखकर हुआ है। अतः यह पुरुषतत्त्व विषयक निरूपण अपने आप में नवीन तथा सर्वथा मौलिक है।

-सरकारी रिपुदमन कॉलेज, नाभा (पंजाब)।

९. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, ३.२.१२. १०. तंत्रालोक, ९.२२५
११. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, ४.१.४.

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

भारत-राष्ट्र को जगाने हेतु स्वामी विवेकानन्द की पुकार

-डॉ. विजयप्रकाश त्रिपाठी

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व व उनके विचार शाश्वत हैं। उनके विचार आज भी लोगों के मन को जाग्रत करने के लिए प्रेरणास्रोत हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों, वेदों एवं उपनषिदों के ज्ञान को जनसामान्य के लिए इस तरह प्रस्तुत किया कि आज उनके वही विचार लोगों के लिए अग्निमंत्र बन गए हैं। '**उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत**'- अर्थात् उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक कि लक्ष्य पूरा न हो जाय। उपनिषद् से निकले इस श्लोक को स्वामी विवेकानन्द ने बहुत लोकप्रिय बनाया। यह मन्त्र उन सभी भारतीयों विशेषकर युवाओं के लिए प्रेरणा का महामंत्र है, जिन्हें शिक्षा-अर्जन के उपरान्त नए कार्यों के माध्यम से एक नए भारत का निर्माण करना है।

मिशिगन विश्वविद्यालय में पत्रकारों के एक समूह से स्वामी विवेकानन्द ने एक बार यह कहा था कि 'फिलहाल यह आपकी सदी है, लेकिन २१वीं सदी भारत की होगी।' शंकालु और निराशावादी स्वभाव के लोग आज भी इस बात पर संदेह कर सकते हैं कि क्या भारत सभी वर्जनाओं से ऊपर उठकर दुनिया की एक प्रमुख अर्थव्यवस्था बन पाएगा, लेकिन वृद्धि के मौजूदा रुझानों से ऐसी उम्मीद की कई किरणें नज़र आती हैं।

विश्व बैंक, अंताराष्ट्रीय मुद्रा-कोष और अन्य कई तरह की वैश्विक एजेन्सियों का यह कहना है कि भारत विकास की सही दिशा में अग्रसर है। हालाँकि इसमें कई तरह की बाधाएँ और चुनौतियाँ भारत के सामने अभी भी हैं, जिनका उसे सामना करना है, कई तरह के पूर्वाग्रहों से निपटना है और सही विचारधारा को अपनाना है।

नए भारत की बुनियाद को मजबूत बनाने के लिए यहाँ सामाजिक सौहार्द, शांतिपूर्ण समावेशन के साथ ही समाज में समानता की राह में आने वाले अवरोधों को दूर करने की जरूरत है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार कहा था कि भारत की आत्मा उसके गाँवों में बसती है। अगर इस देश में वास्तविक रूप से विकास करना है तो उसकी शुरुआत यहाँ के गाँवों से ही करनी होगी। समग्र ग्राम-प्रबंधन-योजना के बिना देश वास्तविक अर्थों में प्रगति नहीं कर सकता।

जब तक हमारे देश में गाँवों में रहने वाले लोगों, झुग्गी-झोंपड़ियों में निवास करने वाले लोगों का विकास नहीं होगा, तब तक देश

विकास के सोपानों में आगे बढ़ते हुए भी सही मानो में तरक्की नहीं कर सकेगा। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार- 'भारत का पुनरुत्थान होगा, पर वह जड़ की शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा होगा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा को लेकर नहीं, वरन शांति और प्रेम की ध्वजा से होगा; संन्यासियों के वेश से धन की शक्ति से नहीं, बल्कि भिक्षापात्र की शक्ति से सम्पादित होगा।...... इसलिए अपनी अंत:स्थित दिव्यता को जगाओ, जो तुम्हें क्षुधा-तृष्णा, शीत-ऊष्ण सहन करने में समर्थ बना देगी। विलासपूर्ण भवनों में बैठे-बैठे जीवन की सुख-सामग्री से घिरे हुए रहना और धर्म की थोड़ी-सी चर्चा कर लेना अन्य देशों में भले ही शोभा दे, पर भारत को तो स्वभावत: सत्य की इससे कहीं अधिक पहचान है। वह तो प्रकृति से ही अधिक सत्यप्रेमी है। वह कपट वेश को अपनी अन्त:शक्ति से ही ताड़ जाता है। तुम लोग त्याग करो, महान् बनो। कोई भी बड़ा कार्य बिना त्याग के नहीं किया जा सकता।'

स्वामी विवेकानन्द ने सन् १८९३ में विश्व-धर्म-संसद में ऐतिहासिक व्याख्यान में यह कहा था कि मुझे अपने धर्म पर गर्व है, जिसने दुनिया को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकार्यता की शिक्षा दी। हम न केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में विश्वास करते हैं, अपितु सभी धर्मों को मूल रूप से स्वीकार भी करते है। मुझे अपने देश पर भी गर्व है, जिसने सभी धर्मों और सभी देश के लोगों को शरण दी।' इसके साथ उन्होंने यह भी कहा था कि 'यह खूबसूरत धरती लम्बे समय से तमाम खाँचों में बँटे समाज, धर्मांधता और उसके खतरनाक प्रभावों से बदसूरत होती जा रही है। इसकी वजह से हिंसा बड़ी और कई बार खून-खराबे तक की नौबत आई, जिसने इन्सानी सभ्यता को नष्ट किया और जिसकी चपेट में लगभग सभी देश आए। अगर यह धर्मान्धता का दानव नहीं होता, तो आज मानव-समाज कहीं अधिक विकसित होता।' धार्मिक एकता की सांझा जमीन के संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि किसी एक धर्म द्वारा दूसरे धर्म पर जीत हासिल करने के बाद शान्ति और एकता की उम्मीद करना बे-मानी है। उनसे मैं यही कहूँगा कि 'बन्धु, आप एक असंभव उम्मीद पाले हुए हैं।'

आज भारत की भाँति दुनिया का कोई और देश ऐसा नहीं है, जो युवाओं की इतनी बड़ी आबादी के साथ तरक्की की राह पर तेज गति से अग्रसर है। स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्ति एवं चरित्र निर्माण का उल्लेख करते हुए यह कहा था कि 'व्यक्ति निर्माण ही मेरे जीवन का लक्ष्य है, मैं न तो कोई नेता हूँ और न ही समाज-सुधारक, मेरा काम ही व्यक्ति और चरित्र निर्माण का है।' स्वामी विवेकानन्द यह चाहते थे कि शिक्षा का उद्देश्य ही जीवन-निर्माण, व्यक्ति-निर्माण और चरित्र-निर्माण होना चाहिए। हमें ऐसे ज्ञानी, कुशल और सही दृष्टिकोण वाले पुरुषों व महिलाओं की जरूरत

है, जो सामाजिक कायाकल्प को रफ्तार दे सकें, उसकी गति तीव्र कर सकें।

स्वामी विवेकानन्द जाति और नस्ल से परे मानवता के उत्थान में विश्वास रखते थे। मानवता की प्रगति और अस्तित्व के लिए उन्होंने अध्यात्म की अहमियत पर बल दिया। वे सिद्ध आध्यात्मिक उपदेशक थे, जिन्होंने पश्चिमी दुनिया को भी 'योग और वेदान्त' से परिचित कराया। स्वामी विवेकानन्द 'पश्चिम और पूरब के बीच एक सेतु की तरह रहे, जिन्होंने मानवता की आध्यात्मिक आधारशिला को सशक्त बनाने में अपना अतुलनीय योगदान दिया।

हमारे देश की युवा-पीढ़ी को उनके आदर्शों का अनुसरण करना चाहिए, उनके विचारों को बार-बार पढ़ना चाहिए और उन्हें आत्मसात् करना चाहिए। उनके विचार अग्निमंत्र कहे जाते हैं और उन्हें पढ़ने वालों व उन पर चिन्तन करने वाले लोगों पर आश्चर्यजनक रूप से असर करते हैं, लोगों के आत्मविश्वास को जबरदस्त ढंग से बढ़ाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द एक महान् राष्ट्रनिर्माता थे। देश की प्रगति में अवरोध पैदा करने वाले कुछ शरारती तत्त्वों द्वारा कुत्सित प्रयासों के दौर में उनकी शिक्षाएँ अधिक समीचीन हैं। हम भारतीय हमेशा से ही **'सर्व-धर्म-समभाव'** में विश्वास करने वाले और सदैव शांति एवं सौहार्द की कामना करने वाले रहे हैं। शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व ही सदैव से हमारा मूलमंत्र रहा है, ऐसे में हमें अपनी समृद्ध सभ्यता की विशेषताओं को स्मरण कर उसे पुनर्जीवित करना होगा। देश के नागरिकों को अपने गौरवशाली इतिहास का स्मरण करते हुए, श्रेष्ठ विचारों को अपनाते हुए आगे बढ़ना होगा।

-८६-३२३, देवनगर, कानपुर। मोबाईल: ९२३५५-११०८३

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

गीता, २.६२

जो मनुष्य सदा विषयों का चिन्तन करता रहता है उसकी उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। जब विभिन्न विषयों में आसक्ति हो जाती है तो वह उन विषयों को प्राप्त करने की इच्छा करने लग जाता है और विषयों की प्राप्ति में रुकावट होने से मनुष्य में क्रोध उत्पन्न होने लगता है।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523
अक्तूबर, २०२०

स्वामी विवेकानन्द तथा हिन्दुधर्म

-डॉ. उमा रानी

अद्वैतवाद की गम्भीर गर्जना से सनातनधर्म की पुनः उद्‌घोषणा करने वाले, अखिल मानव-समाज की कल्याणभावना से महान् युगादर्श को निज जीवन में मूर्त बनाकर अवतीर्ण हुए, भारतीय इतिहास के संकटमय संक्रान्तिकाल में संन्यास का आश्रय लेकर धर्म, समाज तथा राष्ट्र में समष्टि के महान् आदर्श के प्रतिष्ठापक, वेदान्त को आधार बनाकर हिन्दूधर्म का ही नहीं वरन् सभी धर्मों का विश्लेषण करने वाले, परमसन्त और मूलतः आध्यात्मिक व्यक्तित्व वाले स्वामी विवेकानन्द जी के समस्त चिन्तन का आधार धर्म है। धर्म पर विचार करते हुए उन्होंने हिन्दूधर्म को ही आधार माना है। इसके मूलभूत सिद्धान्त की ओर संकेत करते हुए उनका कथन है- हिन्दूधर्म का मूलभूत सिद्धान्त यह है कि सभी मनुष्य भिन्न होने पर भी अनेकता में एकता है।[१] वे हिन्दुधर्म की तीन सारभूत बातों को स्वीकार करते हैं - ईश्वर में, श्रुतिरूप वेदों में तथा कर्मवाद और जन्मान्तरवाद के सिद्धान्त में विश्वास।[२] हम लोग हिन्दू हैं। यह शब्द ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय और आध्यात्मिक हो।

आज धर्म और हिन्दू ये दोनों शब्द समानार्थी हो गये हैं यही हिन्दूधर्म की विशेषता है, इस पर कोई आघात नहीं कर सकता। बर्बर जातियों द्वारा यहाँ आकर तलवारों और तोपों के बल पर बर्बर-धर्मों का प्रचार किए जाने पर भी उनमें से एक भी हमारे मर्मस्थल का स्पर्श न कर सका, अतः यही हमारे धर्म, जाति की जीवनशक्ति है।[३] स्वामी विवेकानन्द ने ११नबम्बर १८९३ को अमेरिका के शिकागो की धर्म-संसद (सर्व-धर्म-सम्मेलन) में हिन्दुत्व पर व्याख्यान देते हुए कहा था- "अमेरिका निवासी बहिनो और भाईयो-आपके स्नेहपूर्ण जोरदार स्वागत से मेरा हृदय अपार हर्ष से भर गया है। मैं आपका दुनियाँ की प्राचीनतम सन्त-परम्परा, सभी धर्मों की जननी हिन्दूधर्म, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों व मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से आभार व्यक्त करता हूँ।

मुझें गर्व है कि मैं एक ऐसे धर्म से हूँ जिसने संसार को सहनशीलता और सार्वभौमिक स्वीकृति का पाठ पढ़ाया है। यह धर्म सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करता। अपितु समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करता है।

मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने पर अभिमान है, जिसने इस धरती के सभी देशों और भिन्न धर्मों से परेशान एवं सताए गए लोगों को शरण दी। मुझे यह बताते हुए गर्व हो रहा है कि हमने अपने हृदय में उन यहूदियों की पवित्र यादें

१. विवेकानन्द साहित्य, १, पृ. २९२ २.वही, पृ. २८७ ३. वही

संजोकर रखी हैं, जिन्होंने दक्षिणी भारत में उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमनों द्वारा धूल में मिला दिया गया था। मुझे एक ऐसे धर्मावलम्बी होने का भी गौरव है, जिसने महान् पारसी धर्म के लोगों को शरण देकर उनकी रक्षा की और जिसका पालन वह लगातार अब तक कर रहा है[४]।'' भाईयो! मैं आपको एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिन्हें मैं बचपन से गाता रहा हूँ और करोड़ों लोग जिन्हें प्रतिदिन गाया करते हैं –

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यः सरितः पयसामर्णव इव।।[५]

जैसे नदियां भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े या सीधे मार्ग से गमन करने वाले मनुष्य अन्त में तुझ में ही आ कर मिल जाते हैं। यह सभी जो विश्व की आज तक की सर्वश्रेष्ठ सभाओं में से एक हैं। गीता के अद्भुत उपदेशों के अनुसार- जो मनुष्य जैसे मेरी ओर आते हैं, मैं उनको वैसे ही प्राप्त होता हूँ। हे पार्थ! मानव भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा सदैव प्रयत्न करते हुए अन्त में मेरी तरफ आते हैं।[६]

साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और बीभत्स धर्मांधता के घोर अत्याचार से यह धरती भर गई है। यह धरणी को बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही सभ्यताओं का विध्वंस करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही है। अगर यह सब न होता तो मानव-समाज कहीं ज्यादा उन्नत होता लेकिन अब इनका समय पूरा हो चूका है, मुझे उम्मीद है कि आज इस सम्मेलन का शंखनाद सभी धर्मान्धताओं का तलवार अथवा लेखनी द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्युनिनाद सिद्ध हो।

हिन्दू धर्म का मूलमन्त्र है – मैं आत्मा हूँ, यह विश्वास होना और तद्रूप बन जाना। अतः हिन्दुओं की सारी साधना-प्रणाली का लक्ष्य है- सतत अध्ययन द्वारा पूर्ण बन जाना, देवता बन जाना, ईश्वर के निकट जा उसके दर्शन कर लेना और इस प्रकार ईश्वर-सांनिध्य को पाकर सत्य के दर्शन कर लेना, जगत्-पिता ईश्वरवत् पूर्ण हो जाना-यही असल में हिन्दूधर्म है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने हिन्दूधर्म के पनपते पाखण्ड का विरोध किया है, उनके अनुसार- कोई मनुष्य चाहे जगत् के समस्त सम्प्रदायों में विश्वास करता हो, सारे धर्मग्रन्थों का ज्ञान रखता हो अथवा संसार की सम्पूर्ण पवित्र नदियों में स्नान का पुण्य अर्जित कर चुका हो परन्तु यदि उसे ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हुआ है, तो मैं उसे नास्तिक मानूँगा।[७] मूर्तिपूजा को भारतवर्ष में अपराध न मानते हुए स्वामी जी का कथन है – वह व्यभिचार की जननी न होकर अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है।[८] हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य असत्य से सत्य की ओर न जाकर सत्य से सत्य की तरफ अग्रसर हो रहा है।

---

४. विवेकानन्द साहित्य पृ. १६-१७ ५. शिवमहिम्नस्तोत्र ६. श्रीमद्भगवद्गीता, ४/११
७. विवेकानन्द सा. २, पृ. २३४ ८. वही, १, पृ. १९

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन से प्रभावित थे। धर्म और विज्ञान का सम्बन्ध बनाते हुए कहते हैं- "विज्ञान एकत्व की खोज के सिवा और कुछ नहीं है। कोई विज्ञानशास्त्र पूर्ण एकता तक पहुँच कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।" उदाहरणार्थं रसायनशास्त्र जब द्रव्यों को बनाने वाले उस एक मूल तत्त्व का पता लगा लेगा तब वह आगे नहीं बढ़ पाएगा, इसी प्रकार भौतिकी जब अन्य शक्तियाँ जिसकी अभिव्यक्ति हैं उस एक मूल-शक्ति को ढूँढ लेगी तब वहीं रुक जाएगी। ऐसे ही, धर्मशास्त्र भी जब इस मृत्यु के इहलोक में एकमात्र जीवन, इस परिवर्तनशील जगत् के शाश्वत आधार, अन्य सब आत्माएँ, जिसकी प्रतीयमान अभिव्यक्तियाँ हैं, ऐसे एकमात्र परमात्मा की खोज कर लेगा, उस समय वह पूर्णता को प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार अनेकता और द्वैत में होते हुए इस परम अद्वैत की प्राप्ति होती है। यही समस्त विज्ञानों का चरम लक्ष्य है।[९] तात्पर्य है कि सभी शास्त्र अन्त में इसी सिद्धान्त पर पहुँचते हैं। आधुनिक विज्ञानशास्त्र इस दृश्यमान जगत् को सृष्टि नाम न देकर उसे विकासमात्र कहता है और हिन्दू धर्म की प्रसन्नता इसी बात में है कि वह जिस सिद्धान्त को अपने अन्तःकरण में बड़े दिनों से धारण किए हुए था, वही सिद्धान्त आज प्रबल भाषा में, विज्ञान के अत्यन्त प्रयोगों द्वारा स्पष्ट सिद्ध करके सिखाया जा रहा है।[१०] स्वामी विवेकानन्द के अनुसार समग्र दर्शनशास्त्र में एक भी ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसमें कहा गया है कि हिन्दुओं का ही उद्धार होगा दूसरों का नहीं। भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास का वचन है कि हिन्दु धर्म में सम्प्रदाय की सीमा के बाहर भी पूर्णत्व तक पहुँचे हुए मनुष्य हैं।

हिन्दूओं के धार्मिक विचारों की यही विशेषता है। देश और काल से अमर्यादित सार्वभौमिक हिन्दूधर्म जिस ईश्वर के सम्बन्ध में उपदेश देता है, उस के समान ही अनन्त हो, जिसकी ज्योति श्रीकृष्ण-भक्तों, ईसा-प्रेमियों, सन्तों और पापियों पर समान रूप से प्रकाशित होती है, जो ब्राह्मणों, बौद्धों, ईसाइयों और मुसलमानों का न होकर इन सभी धर्मों का समष्टिस्वरूप होते हुए भी, जिसमें अनन्त मार्ग खुले रहें और इतना व्यापक हो कि निज असंख्य प्रसारित भुजाओं से सृष्टि के प्रत्येक मानव का आलिङ्गन करता हुआ उसे स्वहृदय में स्थान प्रदान करे।

इस प्रकार भारत को विश्वगुरु के पद पर सुशोभित करने वाले, स्वाधीनता की आत्मिक शक्तिप्रदायक, हिन्दूओं को अस्पृश्यता निवारण की शिक्षा देने वाले, हिन्दु और हिन्दुत्व पर गर्व करने का आत्मबल बढ़ाने वाले तथा विश्वपटल पर भारत और हिन्दुधर्म की कीर्तिपताका फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि हिन्दूधर्म का असली सन्देश लोगों को अलग-अलग धर्म-संप्रदायों के खांचों में बाँटना नहीं, बल्कि पूरी मानवता को एक सूत्र में पिरोना है। उनके अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यही संदेश दिया था कि अलग-अलग कांच से होकर हम तक पहुँचने वाला प्रकाश एक ही है।

-एसोसिएट प्रोफैसर, संस्कृत-विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बीटन (ऊना)

९. विवेकानन्द साहित्य, पृ. १६.

१०. हरदान हर्ष, विवेकानन्द जीवन और दर्शन, पृ. १८

संकल्पना को कल्पना कहना जल्पना है

-श्री देवनारायण भारद्वाज

एक व्यक्ति का लोहे का रुपया नाली में गिर गया। वह उसे निकालने के लिए सोच-विचार कर ही रहा था कि उसे मार्ग में एक मुल्ला जी आते दिखायी दे गये। उसने शोर मचाना आरम्भ कर दिया। खुदा के नाम पर कोई मेरा रुपया निकाल दे। वह इसी वाक्य को दोहराता जा रहा था, तभी मुल्ला जी उसके पास आये और रुपया नाली से निकाल कर , उस व्यक्ति को पकड़ा दिया, पर साथ ही उससे एक प्रश्न किया। तुम हिन्दुओं के तो अनेक भगवान् हैं। तुमने भगवान् के नाम को नहीं पुकारा। खुदा को ही पुकारा। ऐसा क्यों? उसने मुस्कराते हुए सहज उत्तर दे दिया। इस जरा से लोहे के रुपये के लिए मैं अपने भगवान् जी को कष्ट क्यों देता। इसके लिए तो तुम्हारा खुदा ही काफी है। बात हास्य की है, पर संकेत करती है कि साधारण जन-मानस एक नहीं अनेक ईश्वरों के फेर में पड़ा है। और सुनिये, एक ग्राम में चार मित्र नौकरी-चाकरी करके धन कमाने के लिए किसी नगर में जा रहे थे। सन्ध्या हो गयी। किसी ग्राम के पास रात्रि-विश्राम के लिए ठहर गये। भूख-निवारण के लिए कठिनाई से उन्हें सवा किलो मिठाई मिली। एक-एक पाव मिठाई मिलकर चारों मित्रों ने खा ली। बची एक पाव मिठाई। उसके लिए सभी ने तय किया। इसे सुरक्षित पेड़ पर कपड़े में बांधकर टाँग दिया जाये। सवेरे उठने पर इस मिठाई को वह व्यक्ति खायेगा, जिसका स्वप्न सबसे अच्छा होगा। उन चारों व्यक्तियों के नाम जान लेने से आपको उनके सम्प्रदाय का पता चल जायेगा। उनमें से एक थे इन्द्रसोम वैदिक, दूसरे थे इन्द्रसैन वैष्णव, तीसरे थे इन्डरसन ईसाई और चौथे थे इदरीस खान मुसलमान। थके हुए थे, रात्रि में सभी सो गये। प्रातः उठकर शौचादि से निवृत्त होकर अब मिठाई कौन खाये? इसके निर्णय के लिए सभी को अपना स्वप्न सुनाना था। इन्डरसन ने अपना स्वप्न सुनाया। मैं चौथे आसमान पर पहुँच गया। वहाँ परमेश्वर ने मुझे प्यार किया और कहा तू मेरा प्यारा बेटा है। मिठाई तू ही खायेगा। इदरीस खान ने अपना स्वप्न सुनाया मैं सातवें आसमान पर पहुँच गया। वहाँ सजे-धजे तख्त पर खुदा मिले। बोले मौहम्मद ने तेरी बड़ाई की है- मिठाई तू ही खायेगा। इन्द्रसैन वैष्णव ने अपना स्वप्न सुनाया। मैं क्षीरसागर में पहुँच गया था। वहाँ पर सुन्दर शेष-शैय्या पर भगवान् विष्णु विश्राम कर रहे थे और जगत्-जननी माता लक्ष्मी जी उनकी चरणसेवा कर रहीं थीं। दोनों ने मुझे प्यार-दुलार किया। आप लोगों से केवल पिता ने मिठाई खाने को कहा मुझसे तो माता-पिता दोनों ने ही मिठाई खाने को कहा। पर इन्द्रसोम वैदिक का स्वप्न तो सुन लें। आप सभी सो रहे थे। ब्रह्ममुहूर्त में मैं संन्ध्या कर ही रहा था कि एक देवदूत मोटा सोंटा हाथ में लेकर आया। मुझे उठाया और कहा चल मिठाई के पास। इसे खा ले, नहीं तो कसकर सोंटा पड़ेगा। क्या करता

मैं डर के मारे मिठाई खा गया। तीनों मित्र बोल पड़े। इसमें डरने की क्या बात थी। हम लोगों को बुला लेता! इन्द्रसोम ने कहा- आपको मैंने बहुत बुलाया। पर, आप आते कैसे? आप यहाँ थे ही कहाँ, कोई चौथे आसमान में, कोई सातवें आसमान में और कोई क्षीरसागर में था। मेरा ईश्वर तो सर्वव्यापक-सर्वान्तर्यामी है। मुझे उसके पास जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी, वह तो मेरे पास ही रहता है, वही तो मेरा देवदूत प्यारा है। संसार में वेद के विपरीत चलने वाले व्यक्तियों ने ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसी ही मिथ्या धारणायें फैला रक्खी हैं।

इसीलिए तो वेदभगवान् कहते हैं- हे मनुष्यो! तुम लोग उस परमेश्वर को नहीं जानते हो जो सब प्रजाओं और भुवनों को उत्पन्न करता है जो विश्वकर्ता है। वह ब्रह्म सभी में स्थित होते हुए भी भिन्न है। चार प्रकार के लोग उसे नहीं जान सकते हैं। प्रथम, वे जो अज्ञान-आड़म्बर में भटक रहे हैं, द्वितीय वे जो जल्पी हैं- अर्थात् गप्पी हैं-नास्तिक मिथ्यावादी हैं, तृतीय वे जो स्वार्थ-साधक केवल प्राण-पोषण में प्रवृत्त रहते हैं और चतुर्थ वे वाणीमात्र से ईश्वर का नाम-कीर्तन तो करते हैं, किन्तु उसकी वेदाज्ञा से विपरीत चलते हैं।[१]

कोई भी व्यक्ति नित्यप्रति कोई अभियान आरम्भ करता है, तो परमेश्वर हृदय में स्थित आत्मा से बात करता है; जब वह अच्छा काम करता है तो उसे उत्साह-प्रेरणा-प्रसन्नता से भर देता है। जब मनुष्य कोई अनैतिक अपराधपूर्ण कार्य करता है, तो भी वह आत्मा में भय, लज्जा, घृणा, निरुत्साह एवं निन्दा के भाव प्रकट करता है; परन्तु उसकी अन्तर्ध्वनि को अनसुनी करके कुकर्म का अभ्यासी बन जाता है; ऋग्वेद में कहा है- वह ब्रह्म सुनने वाले के ज्ञान व कर्म को प्रकाशित करता है और न सुनने वालों के ज्ञान-कर्म को प्रकाशित नहीं करता। वह न सुनने वालों से दूर और सुनने वालों से निकट है। वह ब्रह्म सब आत्माओं के भीतर तथा बाहर शरीर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राकृतिक वस्तुओं में पूर्णतया व्याप्त, और सर्वत्र सुनने-सुनाने के लिए प्रस्तुत है।[२] इसी प्रकार यजुर्वेद के अनुसार जो लोग ईश्वर को सर्वत्र विद्यमान सर्वान्तर्यामी अनुभव करते हैं, वे अन्याय-अत्याचार से किसी का कुछ भी द्रव्य-अपहरण करना नहीं चाहते; वे त्याग- भावना भूषित धार्मिक होकर इस लोक में अभ्युदय और परलोक में निःश्रेयस की उपलब्धि से सदा आनन्द में रहते हैं।[३]

आश्रम के प्रमुख महन्त देशाटन हेतु जाना चाहते थे। उन्हें अपना एक उत्तराधिकारी चुनना था। सभी शिष्य होड़ में थे कि आश्रम-प्रमुख बन जायें। आश्रम के बड़े उद्यान में बहुत से पशु-पक्षी पाले हुए थे। गुरुजी ने अपने सात शिष्यों को एक-एक कबूतर देते हुए कहा-इसे ले जाइए, जहाँ कोई न देखता हो, वहाँ से मारकर ले आइए। छः शिष्य आश्रम के इधर-उधर, आगे-पीछे गये और छिप-छिपाकर कबूतरों की गर्दन मरोड़कर ले आये। सातवाँ शिष्य सर्वत्र घूमघाम कर लौटा; और जैसा ले गया था-वैसा ही जीवित कबूतर गुरुजी के सामने उपस्थित कर दिया। बोला-गुरुदेव मुझे ऐसा कोई स्थान नहीं मिला, जहाँ मैं इस पक्षी को मार सकता। पहले तो कबूतर ही मुझे प्यारभरी कातर दृष्टि से टुकर-टुकर देख रहा था और फिर वह सर्वव्यापक सर्वेश्वर भी तो यहाँ से जाते हुए ही देखने के लिए मेरे आगे-पीछे लगा हुआ था। गुरुवर ने निर्णय सुनाया- तुम छहों

१. यजुर्वेद १७.३.
२. ऋग्वेद १२.१०.५.
३. यजुर्वेद ४०.१.

शिष्य हत्यारे हो, आश्रम अधिकार के लोभ में पड़कर तुम्हें जीव-हत्या करने में संकोच नहीं लगा। वेदोद्धारक दयानन्द की यही तो शिक्षा है कि माता-पिता-गुरु अथवा कोई भी धर्मविरुद्ध आदेश देता है तो उसको पालन करने में संकोच करना चाहिए। आश्रम-अध्यक्ष तो यही बनेगा, जिसने धर्म, शास्त्र और मेरी शिक्षा का सम्मान किया है और निरीह पक्षी की हत्या नहीं की है, यदि आप लोगों को आश्रम में रहना है, तो मेरे इसी प्रधान शिष्य के निर्देशन में और अग्रिम साधना करनी होगी। आगे भी तो वेदभगवान् का यही आदेश है- 'हे मनुष्यो! जो लोग सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वज्ञ, सनातन, सर्वात्मा, सबके द्रष्टा परमात्मा को जानकर सुख-दुःख एवं हानि-लाभ में अपने आत्मा के समान सब प्राणियों को समझकर, धार्मिक बनते हैं, वे ही नित्यानन्द या मोक्ष के पात्र होते हैं।[४]

वेदाध्ययन की उपेक्षा अथवा अपने-अपने स्वार्थपरक वेदों के अर्थ-निर्वचन से तथाकथित आचार्यों ने अनेकानेक सम्प्रदाय खड़े कर दिए। भारतभूमि के बाहर के अवैदिक मतों को एक ओर छोड़ते हुए, वेदप्रतिपादक आचार्यों ने भी पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय बनाकर ईश्वर के नाम पर अनेक भेद खड़े कर दिए। ईश्वर के प्रति इतना विखण्डन देखकर कुछ लोग अनीश्वरवादी भी बन गए। आदि शंकराचार्य ने वैदिकधर्म की पुनःस्थापना के लिए जो बौद्धमत की अनीश्वरवादी स्थापना से लुप्तप्राय हो गया था; अद्वैतवेदान्तदर्शन प्रतिपादित कर दिया, तो रामानुजाचार्य ने इसे विशिष्टाद्वैत का रूप दे दिया और माध्वाचार्य ने द्वैतवाद स्थापित कर दिया। अन्य अनेक आचार्यों ने ईश्वर के प्रति सूक्ष्म अन्तर से अनेक दर्शन प्रचलित कर दिये। यह तो रही ईश्वरवादी आस्तिकों की बात। ईश्वरवादी आस्तिकों के परस्पर वैषम्य देखकर अनीश्वरवादी नास्तिक उत्पन्न हो गये; जिन्होंने सत्य, अहिंसा, क्षमा आदि वेदानुकूल धर्म के लक्षणों को अपने ढंग में ढ़ाल लिया और वेदवर्णित ईश्वर की सत्ता के स्थान पर अपना सम्प्रदाय-संस्थापक ही ईश्वर मान लिया। पुरातन काल में चार्वाक-दर्शन ने ईश्वर की सत्ता की अवहेलना ठीक वैसे ही की जैसे परिवार के किसी बड़े वयोवृद्ध के रहते बच्चे न तो उत्पात कर पाते हैं और न मनमाना अनाचार कर पाते हैं, जब उनके क्रियाकलाप को कोई देखने वाला नहीं होता, तो वे दुर्व्यसनी होकर खाद्य-अखाद्य खाते-पीते व मनमानी करते हैं। चार्वाक वास्तव में 'चारु-वाक्' गुणी होते हैं। मीठा-मीठा बोलकर ऋण लेकर भी चिकनी-चुपड़ी भोजन-थाली खाते रहते हैं। वाक् या रसना यही दो काम करती है- बोलना और खाना। इनके जीवन-दर्शन का सार है-

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।[५]

वेद सृष्टि में व्याप्त ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वरूप प्रकट करते हुए उस महान् ब्रह्म की वन्दना का उपदेश देता है- यथा भूमि जिसके चरण, अन्तरिक्ष उदर, द्युलोक उसका सिर है। सूर्य-चन्द्र जिसके नेत्र, अग्नि जिसका मुख है। वायु जिसका श्वाँस-प्रश्वाँस है प्रकाश-किरणें जिसकी दृष्टि हैं, दिशायें जिसके कान के समान ज्ञानस्रोत हैं।[६] वही भूत-भविष्य सबका अधिष्ठाता है। जिसका अपना स्वरूप ज्योतिर्मय आनन्द है। उस महानतम ब्रह्म को हमारा नमस्कार हो।[७]

४. यजुर्वेद ४०.६.

६. अथर्ववेद, १०.७.३२-३४.

५. चार्वाक-दर्शन।

७. वही, १०.८.१.

सच्चे धर्म व ईश्वर की सत्ता को समाज में स्थापित करने के लिए दो शक्तियाँ होती हैं, एक- शासक दूसरे सन्त, जो एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं। शासक पुरोहित सन्त का अनुपालन व रक्षण करते हैं। पुरोहित उनका मार्गदर्शन व संरक्षण करते हैं। जब शासक धर्म-निरपेक्ष हो जाता है तो वह अधर्म सापेक्ष हो जाता है; फिर और मनमानी करने लगता है।

ईश्वर की चर्चा हो तो बात लम्बी हो जाती है, पर उपसंहार की ओर बढ़ते हुए एक दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, जिससे पता चलता है कि पहले दरबार में भी ईश्वर की चर्चा होती थी और जनता को सही संदेश दिया जाता था। सम्राट् अकबर ने दरबार में अपने नवरत्नों से प्रश्न किया- 'बताइए! ईश्वर कहाँ रहता है, कैसे मिलता है और क्या करता है!' प्रश्न तीनों ही कठिन जानकर बीरबल ने सम्राट् से अध्ययन-मनन हेतु सात दिन का अवकाश माँग लिया। दिन यूँ ही बीत गये- वे सुस्त-मुस्त दुःखी रहने लगे। अब दरबार में जाने का समय आ गया। बीरबल को चिन्तातुर देखकर उनके किशोर पुत्र ने आग्रहपूर्वक पिता से सारी जानकारी ले ली; और पिता से कह दिया, आप चिन्ता न करें। मैं आपके साथ चलकर तीनों प्रश्नों के उत्तर दे दूँगा। दरबार में बीरबल ने कह दिया। आपके इन प्रश्नों के उत्तर तो मेरा यह किशोर बेटा ही दे देगा। सिंहासन के समक्ष जाकर किशोर ने सम्राट् का अभिवादन किया। फिर उसने कहा मैं आपका दरबारी नहीं हूँ, अतिथि हूँ। अतिथि का तो सत्कार होता है। अकबर ने उसके लिए दूध एवं शर्करा मँगा दी। उसने शर्करा को दूध में मिला दिया और बोला अब न दूध शर्करा है न शर्करा दूध है- जैसे दोनों एकाकार हैं। शर्करा जैसे दूध में व्यापक है, वैसे ही ईश्वर सृष्टि में सर्वव्यापक होकर रहता है। यही आपके पहले प्रश्न का उत्तर है। अब उसने दूध को अंगुली से मथना आरम्भ किया। देर तक अंगुली घुमाते रहने पर अकबर ने पूछा? यह क्या कर रहे हो? दूध में से मक्खन निकाल रहा हूँ। अकबर ने कहा- मक्खन ऐसे नहीं निकलता। बालक ने पूछा कैसे निकलता है, तो उसको बताया गया-पहले दूध को तपाया जाता है फिर जमाया जाता है, फिर मलाई को मथा जाता है, तब मक्खन निकलता है। बालक बोला-यही विधि तो ईश्वर के मिलने की है। यम-नियम-संयम से पहले मन को तपाते हैं, फिर धारणा-ध्यानपूर्वक उसे जमाते-स्थिर करते हैं। इसके बाद चिन्तन-मनन की मथानी से मन्थन करते हैं तो ईश्वर का साक्षात्कार होता है। अकबर बोल उठा शाबाश् बालक, तुम हमारे गुरु हो गये। अब तीसरे प्रश्न का उत्तर भी दे दो। बालक बोला-आपने मुझे गुरु कहा, तो आप शिष्य हुए। ऐसा भी कहीं होता है कि शिष्य सिंहासन के ऊपर बैठा रहे। गुरु नीचे धरातल पर रहकर शिष्य को उपदेश करे। अकबर बोले तुम ठीक कहते हो गुरुजी और स्वयं नीचे उतर आये और बालक को ऊपर पहुँचा दिया। अब प्रश्न का उत्तर देने को कहा, बालक बोला-अच्छा तो सुनिये-ईश्वर यही तो करता है, नीचे वाले को ऊपर, ऊपर वाले को नीचे; अर्थात् कर्मानुसार सबके लिए न्यायपूर्वक फल की व्यवस्था करता है। बालक के प्रश्नोत्तर से सम्राट् के साथ-साथ सम्पूर्ण दरबार प्रसन्न हुआ और महामंत्री नवरत्न बीरबल की भी प्रतिष्ठा बढ़ गई।

पौराणिक इतिहास के महाबली रावण- हिरण्यकश्यप, कंस जैसे नास्तिक हुए जिन्होंने ईश्वर की सत्ता को न स्वीकार कर स्वयं को ही भगवान्

मानने का अहंकार पाल लिया; किन्तु संसार ने यह भी देखा कि इनके सृष्टि-विनाशक अहंकार को चकनाचूर करने के लिये इनके सहोदर विभीषण, पुत्र प्रहलाद और भान्जे कृष्ण को ही कमर कसनी पड़ी। वर्तमान में भी यह परिपाटी जारी है, जिसका पता रोज आने वाले समाचारपत्रों से चलता है। सस्यश्यामलां सुजलां सुफलां फसल उगाने में राजाओं के राजा किसान को जी-जान की बाजी लगानी पड़ती है, पर खरपतवार यूँ ही उग आते हैं और फसल और खेत को ही खाने लगते हैं। किसान को उन्हें उखाड़-फेंकने व नष्ट करने के लिए बल लगाना पड़ता है। एक राज्य में कहीं से कोई नास्तिक आ बसा। उससे सभ्यता-संस्कृति-सदाचार सभी नष्ट होने लगे। किसी के समझाने से वह नास्तिक मानता ही नहीं था और राज्य में धीरे-धीरे दुर्व्यसन फैलते जा रहे थे। राजा ने उसे रोकने के लिए एक विद्वान् सन्त को उससे शास्त्रार्थ करने के लिए आमंत्रित किया। वह सन्त के सभी तर्क अमान्य कर देता था। वह अपने अनुयायिओं से कहता था कि सन्त महाराज के कोई भी शास्त्रीय वचन क्यों न हों, जब मैं उनकी बातों को मानूँगा ही नहीं, तो उनकी जीत व मेरी हार कैसे होगी। अन्तिम सातवें दिन का शास्त्रार्थं प्रारम्भ होने का समय आ गया, सन्त अभी तक नहीं आये। आधा घण्टा फिर एक घण्टा बीत गया। सन्त जी के अब तक न आने पर उपस्थित जनता से नास्तिक कहने लगा, वे हार जाने के भय से शायद नगर छोड़कर ही चले गये हैं। अब तो नास्तिकता की जीत होकर रहेगी। यही बात चल रही थी, कि कहीं दूर-सन्त की छवि दिखाई दी, सभा आश्वस्त हुई और वे सभा में आ गये। शास्त्रार्थ का विषय था-यह संसार किसी ने बनाया नही, अपने आप बन गया है। सन्त के कहा मैं देशाटन के लिए नदी के पार चला गया था। इधर से गया था, तो पानी उथला था, लौटने लगा तो पानी गहरा डुबाऊ हो गया था। मेरे लिए नदी के उस पार से इस पार से आना असंभव था। तभी क्या देखता हूँ-पास खड़े पेड़ से तख्ते अपने आप कटकर बन गये। तख्तों की नाव अपने आप बन गयी। नाव ने मुझको अपने आप अपने ऊपर चढ़ा लिया। बिना केवट के अपने आप तैरने लगी और मुझे इस किनारे पहुँचा दिया। इसीलिए मुझे आने में देर हो गयी। पहले वह नास्तिक नेता फिर उसके साथी सब एक स्वर से चिल्ला उठे। ऐसा नहीं हो सकता-अपने आप यह सब कुछ नहीं हो सकता। तभी सन्त बोल पड़े- यही तो मैं कहता हूँ कि जब नदी पार होने का काम-छोटा सा काम अपने आप नहीं हो सकता है- तो यह अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि अपने आप कैसे बन सकती है। इसको बनाने वाली कोई सत्ता है-वही ईश्वर है। जो सत्य-संकल्पना अर्थात् सुदृढ़ सुनिश्चय है उसे कल्पना अर्थात् अनुमान-अटकल कहना जल्पना अर्थात् प्रलाप-बकवाद व गल्प है। उपनिषद् वाक्य 'सत्यमेव जयते नानृतम्' के उद्घोष के साथ लेखनी को विश्राम देता हूँ।

– प्रधान सम्पादक 'वयस्वी'
'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग, अलीगढ़ (उ.प्र.)

संस्थान-समाचार

दान –

डॉ. हरि मित्र शर्मा, १०,०००/-
डिप्टी लाईब्रेरियन (रिटायर्ड)
वी.वी.आई.एस.आई.एस.,
(पं. वि. पटल), साधु आश्रम, होशियारपुर

चौ० भगवान सिंह ५०००/-
पार्वती नासा चेरिटेबल ट्रस्ट
फ्लैट–१२०२, ओरचिड पीटल,
सैक्टर–४९, गुड़गाँव, हरियाणा।

(डॉ.) रेणू २०००/-
प्रो. पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

प्रो. यशपाल वालिया (रिटायर्ड) ३१००/-
मानवता नगर, निकट कपिला हस्पताल,
सुतेहरी रोड, होशियारपुर।

श्री एस.के. भसीन, २१००/-
६–ए, आनन्द धाम,
२५, प्रभात कॉलोनी, संताक्रूज़ पूर्वी, बम्बई।

श्री गंगाकृष्ण मरवाहा, ५००/-
ईश नगर, जी.पी.ओ. रोड़,
होशियारपुर।

श्रीमती चंचल कुमारी, ५०००/-
डॉ. हरिवंश चंचल शर्मा चेरिटेबल ट्रस्ट
सैक्टर–२२ बी, चण्डीगढ़।

श्री रवि कुमार जैन, ५१००/-
फार्मा क्राफ्ट, प्रगति भवन,
निकट एस.डी.सिटी पब्लिक स्कूल,
चिन्तपूर्णी रोड, होशियारपुर।

श्री ईश्वर दास चौधरी, ३०००/-
बी–३०, कैलाश कॉलोनी,
नई दिल्ली।

डॉ. तिलक राज शर्मा, २००/-
कृष्णा नगर, होशियारपुर।

डॉ. के.के. शर्मा, ११००/-
३८–एल, माडल टाऊन, होशियारपुर।

विविध-समाचार

आचार्य राजाराम शास्त्री को श्रद्धाञ्जलि-

चले गए अपने सभी साथियों को छोड़कर, अमित–प्रतिभा के धनी मतिमान्, स्वयं खुश रहने तथा अपने साथियों को भी अपनी अनुपम परस्पर वार्तालाप की शैली से खुश रखने वाले आचार्य राजाराम शास्त्री। आचार्य राजाराम शास्त्री से मेरा ही नहीं, अपितु मुझ जैसे अन्य कई मित्रों का सम्बन्ध विद्यार्थीकाल से ही था। शास्त्री जी एक विलक्षण व्यक्तित्व के धनी तो थे ही, साथ ही सर्वदा स्वयं खुश रहना तथा मित्र- मण्डली को भी खुश रखना उनका अपना ही तरीका था। बात इस ढंग से करना कि सुनने वाला व्यक्ति उनकी ओर आकर्षित हो जाया करता। ज्योतिषविद्या के तो आप विशेष पण्डित थे ही, साथ ही उनका जो अपना एक विशेष व्यक्तित्व था, उसके कारण केवल उनके अपने मित्र ही नहीं परञ्च उनके सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति उनको भूल नहीं सकता था। यही कारण था कि यदा कदा मित्र–मण्डली में उनकी चर्चा प्रायः अब भी बनी रहती थी, और उनके चले जाने पर भी बनी रहेगी। ऐसे व्यक्ति के जाने से उनके परिवार को जो दुःख हुआ, जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति संभव नहीं। साथ ही समाज की भी जो क्षति हुई उसकी भरपाई संभव नहीं।

प्रभु से प्रार्थना है कि ऐसे साथी की आत्मा, जहाँ कहीं हो, परमपिता परमात्मा उनको शान्ति तथा सुख प्रदान करे, एवम् उनके परिवार तथा सम्बन्धियों तथा मित्रजनों को उस अपार दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे, जो उनके बिछुड़ने से हुआ। इन्हीं शब्दों के साथ मेरी तथा सभी साथियों की ओर से श्रद्धेय भाई राजाराम शास्त्री को भावभीनी–श्रद्धाञ्जलि समर्पित।

इन्द्रदत्त उनियाल

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर

शोक समाचार- अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि वयोवृद्ध, प्रसिद्ध आर्यनेता श्री रामनाथ सहगल जी का २०-०४-२०२० को देहली में देहान्त हो गया। आप डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, देहली के उपप्रधान थे। आप महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट (टंकारा) एवं आर्य कन्या गुरुकुल दाधिया (राजस्थान) के मन्त्री थे। आपका आर्यरत्न श्री पूनम सूरी जी के परिवार के साथ पारिवारिक आत्मीयता का संबंध था। श्री सूरी जी के परिवार में आपको बड़े बुजुर्गों की तरह ही आदर-सम्मान प्राप्त था। महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा की स्थापना में एवं ट्रस्ट के मंत्री के रूप में टंकारा ट्रस्ट की आप द्वारा की सेवा अविस्मरणीय है। डी.ए.वी. संस्था के साथ आपका बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है और आपको २०१४ में डी.ए.वी. की ओर से **आजीवन उपलिब्ध सम्मान** से सम्मानित किया गया। देश-विदेश की सभी आर्यसमाजों तथा संस्थाओं में आपको ससम्मान स्मरण किया जाता है। डी.ए.वी. संस्थाओं तथा आर्यसमाजों को आपके चले जाने से अपूर्णीय क्षति हुई है। संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से स्वर्गीय सहगल जी को श्रद्धांजलि दी जाती है और प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शन्ति प्रदान करे तथा उनके वियोग से दुःखी पारिवारिक जनों को इस दुःख को सहने की शक्ति दे।

(टंकारा समाचार से साभार)

ॐ शांति! शांति!! शांति!!

‘सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक हिन्दी साहित्य’ विषयक अंताराष्ट्रीय वेबगोष्ठी का आयोजन

आज दिनांक २१ अगस्त को विश्वविद्यालय के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय द्वारा हिमवंत कवि चन्द्र कुंवर बर्त्वाल के जन्मोत्सव समाराहों के अवसर पर एकदिवसीय अंताराष्ट्रीय वेबगोष्ठी का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर देवी प्रसाद त्रिपाठी ने अत्यल्प समय में अपने लेखन व प्रतिभा के माध्यम से साहित्य में अपना स्थान बनाने वाले कवि चन्द्र कुंवर बर्त्वाल के कृतित्व की सराहना की। संगोष्ठी का शुभारंभ करते हुए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय के अध्यक्ष तथा वेब-गोष्ठी के संयोजक प्रो. दिनेश चन्द्र चमोला ने कहा कि हिमवंत कवि चन्द्र कुंवर बर्त्वाल स्मृति व्याख्यानमाला के क्रम में जहां विभाग द्वारा विगत वर्ष कवि जन्म शताब्दी समारोह आयोजित किया गया, वहीं इस बार उनकी स्मृति को बनाए रखते हुए अंताराष्ट्रीय विद्वानों के सांनिध्य में साहित्य की चर्चा के साथ-साथ ‘सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक हिन्दी साहित्य’ विषय पर अंताराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जाना निश्चित रूप से विभाग की प्रमुख उपलब्धियों में से एक है। उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलसचिव श्री गिरीश कुमार अवस्थी ने आमंत्रित विद्वानों और प्रतिभागियों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

प्रो. दिनेश चमोला “शैलेष”
डीन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान संकाय, उत्तराखंड संस्कृतविश्वविद्यालय,
१५७, गढ़ विहार, फेज-१, मोहकमपुर, देहरादून-५

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यं अनुसूया क्षमा धृतिः।।

विदुरनीति, १.८६.

मनुष्य को अपने जीवन में सत्य बोलना, दान देना, आलस्य का त्याग, दूसरे के दोषों को न ढूंढना, क्षमा करना, धैर्य रखना- इन सभी श्रेष्ठ गुणों को कभी भी त्यागना नहीं चाहिए।

IN SWEET MEMORY OF
RESPECTED MOTHER

SMT. SAVITRI DEVI MARWAHA

BY

SH. GANGA BISHAN MARWAHA (SON)
SH. SUBHASH CHANDER MARWAHA (SON)
SMT. SANTOSH KUMARI MARWAHA (DAUGHTER-IN-LAW)
ISH NAGAR, GPO ROAD, HOSHIARPUR

इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम्।
यत्किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम्।।

ऋग्वेद, ६.४७.१०.

हे परमेश्वर! आपकी कृपा से मेरे अन्दर जीने की चाह बनी रहे। लोहे की धार की तरह मेरी बुद्धि को ज्ञानप्राप्ति के लिए प्रेरित कीजिए। मेरी प्रार्थना को आप स्वीकार कीजिए और मुझे ज्ञान का प्रकाश दीजिए।

अपने पूज्य पिताश्री

स्व. डॉ. मुल्कराज जी भसीन, होशियारपुर

(जन्म : 17. 9. 1904, निधन : 20. 10. 69)

व अपनी पूज्या माताश्री

स्व. श्रीमती सुरेन्द्रा भसीन

(जन्म : 2. 9. 1914, निधन : 2. 5. 1999)

तथा

स्व. श्री सुरेन्द्र कुमार कपूर

(निधन : 17. 12. 1976 को शिकागो में)

स्व. डॉ. परमानंद त्रेहन

(निधन : 13. 8. 08 को पंचकुला में)

उनकी धर्मपत्नी

स्व. श्रीमती चन्द्रप्रभा त्रेहन

(निधन : 4. 7. 12 को पंचकुला में)

व उनके सुपुत्र

स्व. श्री ललित त्रेहन

(जिनका निधन अत्यंत अल्पआयु में 22. 10. 07 को पंचकुला में)

की पुण्य स्मृति में

प्रयोजक वर्ग-:

श्री सत्येन्द्र भसीन (पुत्र), श्रीमती अरुणा कपूर (स्व. श्री सुरेन्द्र कुमार की धर्मपत्नी)
क़निका त्रेहन व परिवार के सभी सदस्य
6-ए आनन्दधाम, 25, प्रभात कालोनी, शान्ताक्रुज, ईस्ट, मुम्बई-55

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित्।।

महाभारत

इस संसार में शुभ कर्मों से सुख की प्राप्ति और अशुभ कर्मों से दुःख की प्राप्ति होती है। मनुष्य को अपना किया कर्म ही शुभ-अशुभ फल देने वाला होता है। यदि कोई कर्म किया ही नहीं, तो उसका फल भी भोगने को नहीं मिलता।

स्व. श्री चौधरी टोपनदास नासा

स्व. श्रीमती रामदेवी नासा

तथा

स्व. चौधरी भगवान सिंह नासा

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

चौधरी श्री भगवान सिंह पार्वती नासा धर्मार्थ न्यास

ओरचीड पेटल्ज, सोहना रोड, सैक्टर-49, गुड़गांव।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभूः रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धरिमजरं युवानम्।।

अथर्ववेद–१०.८.४४.

सर्वव्यापी परमात्मा निष्काम, धीर, अविनाशी, स्वयंभू, आनन्दस्वरूप है तथा किसी भी प्रकार की त्रुटि से रहित है। उस धीर, अजर-अमर और युवा परमात्मा को जानने वाला मनुष्य कभी भी मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

अपनी पूज्या माताश्री

स्व० श्रीमती मायावती आहलुवालिया

(निधन : अप्रैल २०१२ में)

की

पावन स्मृति

में

सादर समर्पित

प्रयोजक :

प्रो. यशपाल वालिया पी.ई.एस. (I) रिटायर्ड

पूर्व प्राध्यापक, सरकारी कॉलेज, होशियारपुर

उदगीथ सदन, मानवता नगर,

निकट डॉ. कपिला हस्पताल, सुतेहरी रोड़,

होशियारपुर

सत्संग मन्दिर

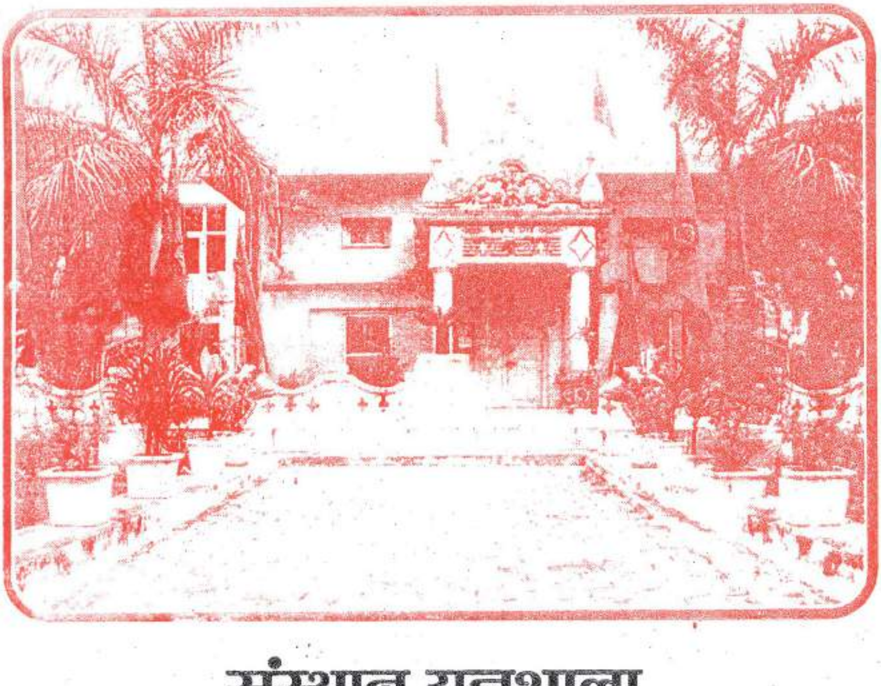

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम, होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-०९-२०२० को प्रकाशित।